इग्नू
जन जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDC-131

हिंदी साहित्य का इतिहास

खंड

3

रीतिकाव्य और आधुनिक साहित्य का प्रादुर्भाव

इकाई 8

रीतिकाव्य : परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ 5

इकाई 9

रीतिकाव्य के प्रमुख कवि 18

इकाई 10

भारतेंदु युग 34

इकाई 11

द्विवेदी युग 56

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. मैनेजर पांडेय
बीडी/8ए, डी.डी.ए. फ्लैट
मुनिरका, नई दिल्ली–110067

प्रो. निर्मला जैन
ए–20/17, डी.एल.एफ. सिटी
फेज–1, गुड़गाँव–122002, हरियाणा

प्रो. विश्वनाथ त्रिपाठी
बी–5, एफ.2, दिलशाद गार्डन, दिल्ली–110095

प्रो. हरिमोहन शर्मा
184, कादंबरी अपार्टमेंट, सेक्टर–9, रोहिणी, दिल्ली–110085

प्रो. गोबिंद प्रसाद
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

संकाय सदस्य

प्रो. सत्यकाम, निदेशक
मानविकी विद्यापीठ

प्रो. शत्रुघ्न कुमार
प्रो. स्मिता चतुर्वेदी
प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

इकाई लेखक

प्रो. महेन्द्र कुमार — इकाई 8
प्रो. पूरनचंद टंडन — इकाई 9, 10 तथा 11

संशोधन

प्रो. सत्यकाम, डॉ. राजीव कुमार
(इकाई 8, 9, 10 और 11)

पाठ्यक्रम संयोजन और संपादन

प्रो. सत्यकाम
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

संपादन सहयोग

डॉ. राजीव कुमार
परामर्शदाता, हिंदी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

सचिवालयी सहयोग

श्री शशि रंजन आलोक
सहायक कार्यपालक (डाटा प्रासेसिंग)
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

आवरण

सुश्री अरविन्दर चावला
ए.डी.ए. ग्राफिक्स
नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री के. एन. मोहनन
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन), सामग्री निर्माण
एवं वितरण प्रभाग, इग्नू, नई दिल्ली-110068

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन), सामग्री निर्माण
एवं वितरण प्रभाग, इग्नू, नई दिल्ली-110068

सितंबर, 2019
© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2019*
ISBN : 978-93-89200-20-1
सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्र मुद्रण) द्वारा अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली–110068 से अथवा इग्नू की आधिकारिक वेबसाइट www.ignou.ac.in से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

कंपोज़िंग एवं लेज़र टाइपसैट– ग्राफिक प्रिंटर्स, 204, पंकज टॉवर, मयूर विहार फेस 1, दिल्ली – 110091

मुद्रक : एस जी प्रिण्ट पैक्स प्रा० लि०, एफ-478, सेक्टर-63, नोएडा-201301, उ०प्र०

खंड परिचय : (खंड 3 – रीतिकाव्य और आधुनिक साहित्य का प्रादुर्भाव)

आपके समक्ष अनिवार्य पाठ्यक्रम – '**हिंदी साहित्य का इतिहास**' का तृतीय खंड – '**रीतिकाव्य और आधुनिक साहित्य का प्रादुर्भाव**' प्रस्तुत है। इस खंड में आप हिंदी साहित्य के रीतिकालीन काव्य तथा आधुनिक काव्य के प्रारंभिक दो महत्वपूर्ण पड़ाव – 'भारतेंदु युग' तथा 'द्विवेदी युग' का अध्ययन करेंगे। इस खंड में इकाई–8 से लेकर इकाई–11 तक कुल चार इकाइयाँ इस प्रकार से हैं :

इकाई–8 : रीतिकाव्य : परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ

इकाई–9 : रीतिकाव्य के प्रमुख कवि

इकाई–10 : भारतेंदु युग

इकाई–11 : द्विवेदी युग

हिंदी साहित्य में भक्ति युग के बाद रीतिकाल की शुरूआत होती है। रीतिकाल में प्रेम तथा श्रृंगार से संबंधित खास ढर्रे पर कविताएँ लिखी गईं। साहित्य में रीतिकाव्य के उत्थान के पीछे कुछ ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की भूमिका थी। इस खंड की प्रथम इकाई में इस संबंध में आप विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे। 'रीति' इस युग की केंद्रीय प्रवृत्ति थी पर पूरा रीतिकाव्य एक-सा नहीं था। इस इकाई में ही रीतिकाव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों की भी जानकारी दी जाएगी। इस खंड की दूसरी इकाई में आप रीतिकाव्य की तीन प्रमुख धाराओं (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त) के कवियों तथा उनके काव्यगत योगदान की जानकारी प्राप्त करेंगे।

रीतिकाव्य के अवसान के बाद हिंदी में आधुनिक युग का आगमन होता है। आधुनिकता के इस विकास के पीछे भारत में नवजागरण की चेतना की प्रमुख भूमिका थी। हिंदी साहित्य के आधुनिक चरण की शुरूआत भारतेंदु युग से होता है। भारतेंदु तथा उनके मंडल के साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य के इस दौर में युगांतकारी परिवर्तन को संभव किया। इस खंड की तीसरी इकाई – 'भारतेंदु युग' में आप इसके बारे में विस्तार से जानकारी पाएँगे।

भारतेंदु हरिशचंद्र की भाँति ही महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने समय में 'सरस्वती' के संपादक के रूप में हिंदी साहित्य को गहरे रूप से प्रभावित किया। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी के 'रूप' को स्थिर करने में भूमिका अदा की। कवियों-लेखकों को विभिन्न विषयों पर लिखने के लिए प्रेरित किया। खंड की चौथी इकाई – 'द्विवेदी युग' में आप इस दौर में हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं के विकास तथा इस विकास में योगदान देने वाले लेखकों की जानकारी पाएँगे।

आप इकाइयों को पढ़िए तथा प्रश्नों के उत्तर तैयार कीजिए। आपकी सुविधा के लिए प्रश्नों के उत्तर अथवा उन्हें हल करने के संकेत भी दिए गए हैं।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 रीतिकाव्य : परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 रीतिकाव्य का अभिप्राय

8.2.1 रीतिकाल : अर्थ और स्वरूप

8.2.2 रीतिकाव्य का वर्गीकरण

8.3 रीतिकाव्य की परिस्थितियाँ

8.3.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ

8.3.2 सामाजिक परिस्थितियाँ

8.3.3 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

8.4 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

8.4.1 रीति निरूपण

8.4.2 श्रृंगारिकता

8.4.3 रीति-इतर काव्य

8.5 सारांश

8.6 उपयोगी पुस्तकें

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ्यक्रम की यह आठवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- रीतिकाल के अर्थ और स्वरूप की जानकारी दे पाएँगे;
- रीतिकाव्य के दौर की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के बारे में बता पाएँगे तथा
- रीतिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाल पाएँगे।

8.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल ही रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार रीतिकालीन काव्य का समय सन् 1643 ई. से 1843 ई. (संवत् 1700 से 1900) के बीच है। भक्तिकाल के बाद का यह युग ऐतिहासिक रूप से अशांति और अव्यवस्था का युग रहा है। मुगल शासन की शक्तिहीनता, बाहरी आक्रमणों, प्रादेशिक शासकों के पारस्परिक युद्धों, मराठों और सिखों के आक्रमणों और कम्पनी शासन की राज्य-विस्तार की महत्वाकांक्षा के कारण इस युग में हिंदी भाषा-भाषी प्रदेशों में अशांति और अव्यवस्था का वातावरण बना रहा। इस पूरी स्थिति का अध्ययन हम आगे विस्तार से करेंगे।

वास्तव में परिस्थितियाँ साहित्य सृजन की प्रभावी प्रेरणा तो बनती ही हैं, साहित्यकार और कला-प्रेमियों की दिशा-निर्देशिका का कार्य भी करती हैं। इसी प्रकार परिस्थितियों को बदलने-लाँघने का साहसपूर्ण कार्य भी साहित्यकार करता है। कह सकते हैं कि दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। संपूर्ण विश्व के और सभी भाषाओं के साहित्य पर परिस्थितियों के प्रभाव को देखा-समझा जा सकता है।

रीतिकालीन साहित्य में भक्ति जैसी प्रमुख प्रवृत्ति का स्थान श्रृंगार ले लेती है। परंतु ऐसा क्यों? इस युग का कवि या साहित्यकार श्रृंगारी क्यों हुआ? उसने ऐसी ही कविता लिखने की प्रेरणा कहाँ से और क्यों पाई? उसके श्रृंगारी काव्य-सृजन को प्रोत्साहन किसने दिया? ऐसे कितने ही प्रश्नों का उत्तर है इस युग की परिस्थितियाँ और तात्कालिक परिवेश।

8.2 रीतिकाव्य का अभिप्राय

इकाई के इस भाग में हम रीतिकाल का अर्थ और स्वरूप स्पष्ट करने के साथ-साथ रीतिकाल की विभिन्न प्रवृत्तियों और वर्गीकरण की चर्चा करेंगे।

8.2.1 रीतिकाल : अर्थ और स्वरूप

मध्यकालीन समाज सामंतवादी पद्धति का समाज था। उच्च वर्ग के राजाओं तथा सामंतों का जीवन वैभव का जीवन था। पुष्प, इत्र, गंध, फव्वारे, उद्यान और रमणीय विहार स्थल राजाओं-सामंतों को तृप्ति प्रदान करते थे तो सुरा-सुराही और सुंदरी जैसी विलासी सामग्रियों के कारण वे नैतिक चेतना से विमुख होते जा रहे थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा भी है, ''श्रृंगार के वर्णन को बहुत से कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया। इसका कारण जनता की रुचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।''

रीतिकालीन मुगल बादशाह शाहजहाँ और अन्य प्रादेशिक शासकों के राज्यकाल में कवि और कलाकारों को दरबारी आश्रय तथा प्रोत्साहन मिलता था। शाहजहाँ को स्थापत्य-कला, चित्रकला, संगीत तथा काव्यादि में विशेष रुचि थी। आर्थिक-मोह तथा कला-संरक्षण की प्रवृत्ति ने कवियों-कलाकारों को दरबारी बनाया तो कविता और कला भी दरबारी बनते चले गए। आश्रयदाताओं का मनोविनोद तथा कवियों की अर्थ-प्राप्ति एक-दूसरे के पूरक बनते चल गए। काव्य रचना अब राजाओं की रुचि और इच्छा के अनुरूप ही होने लगी। कवियों ने आश्रयदाताओं को तृप्त और प्रसन्न करने के लिए श्रृंगारी रचनाओं का सृजन जी भर के किया। राजाओं की वासना-तृप्ति ने कविता का उद्देश्य तथा स्वरूप बदल डाला। इसी को लक्ष्य करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, ''वाग्धारा बँधी हुई नालियों में ही प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गए।''

कवियों से काव्य शिक्षा ग्रहण करना भी राजाओं—आश्रयदाताओं की रुचि में शामिल हो गया। परिणामतः संस्कृत के काव्य-लक्षणों को ध्यान में रखकर कवियों ने आचार्यत्व धर्म का मोह पाला और वे काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण भी करने लगे। इसी युग में कुछ रीतिइतर काव्य परंपराएँ भी मिलती हैं जो कि भक्तिकालीन परंपराओं का गौण-विस्तार भी कही जा सकती हैं। ऐसी काव्य धाराओं में सगुण भक्तिपरक, ज्ञानमार्गी, प्रेममार्गी, नीतिपरक, वीरकाव्यपरक, प्रकृति, राजप्रशस्ति और चिकित्सा संबंधी तथा ज्योतिष संबंधी काव्य-सृजन भी चलता रहा, परंतु यह सब अत्यंत गौण रहा। मुख्य रूप से रीतिकाल में 'श्रृंगार' की प्रवृत्ति ही मुखर रही। रीतिबद्ध, रीतिमुक्त तथा रीतिसिद्ध — तीनों प्रकार के काव्य में यही प्रवृत्ति प्रमुख बनी रही।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि रीतिकालीन-परिवेश तथा युगीन परिस्थितियों की आधारशिला पर स्थापित होने के कारण ही इस साहित्य का यह स्वरूप निर्मित हुआ। मुगल शासकों के प्रभावस्वरूप ही फारसी भाषा तथा साहित्य का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में देखा जा सकता है। फारसी साहित्य की विरह-व्यंजना को रीतिमुक्त कविता के मूल में देख सकते हैं तो अरबी-फारसी शब्दावली के अतिरेक को ब्रजभाषा के समाहित रूप में देखा जा सकता है। इसी प्रकार संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा के आचार्य – भरत से लेकर पंडितराज जगन्नाथ – तक के सभी आचार्यों तथा विभिन्न काव्य संप्रदायों – रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति और औचित्य आदि के प्रभाव को भी रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में देखा जा सकता है। अलंकार-निरूपण, रस-विवेचन, नायक-नायिका भेद तथा नख-शिख वर्णन आदि का जो विशाल भंडार इस युग के साहित्य में उपलब्ध है, वह संस्कृत की परंपरा का पोषक ही कहा जा सकता है। इसकी प्रेरणा भी वही है।

8.2.2 रीतिकाव्य का वर्गीकरण

आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में इस काल के सभी कवियों को दो भागों में बाँटा है। एक वर्ग तो ऐसे कवियों का है जिन्होंने समग्रतः या अंशतः रीति-परंपरा का पालन किया। दूसरे वर्ग के कवि वे हैं जिन्होंने परंपरा से मुक्त रहकर काव्य सृजन किया। रीतिकाल के विभाजन को उनके द्वारा दिया गया शीर्षक है– 'रीतिग्रंथकार कवि' तथा 'रीतिकाल के अन्य कवि'।

शुक्ल जी के बाद के विद्वानों ने रीति-परंपरा को स्पष्टतः अपनाने, काव्य में इसके प्रत्यक्षतः या परोक्षतः पालन करने तथा इनसे सर्वथा मुक्त रहकर भी रस-दृष्टि से संपृक्त रहने के आधार पर रीतिकाल के कवियों और प्रवृत्तियों को तीन वर्गों में विभाजित किया। ये विभाजन इस प्रकार हैं :

(i) **रीतिबद्ध कवि** : ये वे कवि थे जिन्होंने रीति परंपरा में बँधकर लक्षण-ग्रंथ लिखे। जो लक्षण इन्होंने प्रस्तुत किए उन्हें स्पष्ट और पुष्ट करने के लिए उदाहरणस्वरूप अपनी कविता भी प्रस्तुत की। चिंतामणि, मतिराम, देव, भिखारीदास, सोमनाथ, जसवंतसिंह आदि इसी प्रकार के कवि हैं।

(ii) **रीतिसिद्ध कवि (रससिद्ध कवि)** : ऐसे कवि जिन्होंने लक्षण बताने वाले ग्रंथ तो नहीं लिखे, फिर भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस परंपरा की मान्यताओं को अपने काव्य में उपयोग किया और सृजन के क्षणों में उनका प्रायः पूर्ण ध्यान भी रखा उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा गया है। बिहारी, सेनापति आदि इसी प्रकार के कवि हैं।

(iii) **रीतिमुक्त कवि** : इन कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथों की रचना की और न ही रीतिकालीन परंपराओं को ही निभाया। इस प्रकार के दबाव से पूर्णतः स्वतंत्र रहकर इन्होंने विशुद्ध श्रृंगार की आत्मानुभूतिपरक कविताएँ लिखीं। विरक्ति-भावना और प्रकृति-चित्रण से संबंधित मुक्त काव्य रचने वाले ये रीतिमुक्त कवि निज प्रेम की पीड़ा को गाते-सुनाते रहे। इस तरह के कवियों में घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव प्रमुख हैं।

8.3 रीतिकाव्य की परिस्थितियाँ

किसी भी साहित्य के निर्माण में तत्कालीन परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कवि या साहित्यकार को प्रेरक-बिंदु प्रदान करने और उनकी अभिव्यक्ति के लिए परिवेश प्रदान करने का श्रेय परिस्थितियों को ही जाता है। रीतिकालीन साहित्य के संदर्भ में तो परिस्थितियों का अध्ययन-विश्लेषण करना और भी अधिक अपेक्षित जान पड़ता है।

रीतिकालीन समाज में जो घट रहा था उसी से लेखक-वर्ग प्रभावित होकर अपनी लेखनी का उपयोग कर रहा था। युगीन घटनाएँ साहित्य के स्वरूप को आकार प्रदान कर रही थीं। राजाओं-आश्रयदाताओं की रुचियाँ साहित्यकार को एक खास तरह की मानसिकता दे रही थीं। कवि ने सामाजिक अनुभूति को ही साहित्यिक अभिव्यक्ति बनाकर प्रस्तुत करना प्रारंभ किया। जन-सामान्य की स्थितियों को तथा काव्य और कला के स्वरूप को राजाओं की चितवृत्ति के अनुसार ढ़लना पड़ा। युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ इन्हीं चितवृत्तियों तथा मनोवृत्तियों से प्रभावित हुईं और फिर साहित्य तथा साहित्यकार को प्रेरित-प्रभावित किया।

8.3.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ

हिंदी का भक्तिकालीन साहित्य जब अपने चरम उत्कर्ष पर था और रीतिकाल की पृष्ठभूमि तैयार होने लगी थी तब अकबर (1566 ई. - 1605 ई.) का शासनकाल था। यह काल सर्वांगपूर्णता, शांति और सुख-समृद्धि का काल कहा जाता है। अकबर की कूटनीति, शांति-चेष्टाओं और समन्वय भावना ने देश के राजनैतिक वातावरण को शांति, निश्चिंतता तथा सुरक्षा की स्थितियाँ प्रदान की थीं। किंतु अकबर के बाद जहाँगीर (1605 ई. - 1627 ई.) के शासनकाल तक आकर राजनीतिक विघटन तीव्रता से प्रारंभ हुआ। राजनीतिक षड्यंत्रों, भयावह युद्धों और गृह-कलह के कारण घटित होने वाली रक्तरंजित घटनाओं ने यहाँ के राजनीतिक वातावरण में अस्थिरता उत्पन्न कर दी। अतः राजनीतिक दृष्टि से यह काल मुगलों के शासन के वैभव और चरमोत्कर्ष तथा फिर उत्तरोत्तर ह्रास, पतन और निराशा का युग कहा जा सकता है।

जहाँगीर ने अपने शासन काल में, राज्य का जो विस्तार किया था, शाहजहाँ (1628 ई. - 1658 ई.) ने उसकी अत्यधिक वृद्धि की। उसने उत्तरी भारत के साथ-साथ दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा राज्य तक तथा उत्तर-पश्चिम में सिंध से असम, अफ़गान प्रदेश तथा दक्षिण के औसा तक एकछत्र साम्राज्य की स्थापना कर ली। यह मुगल शासन का वह काल था जब सुख-वैभव चारों ओर बिखरा था। ताज़महल जैसी यादगारों का निर्माण मुगलों के इसी वैभव तथा कोष-समृद्धि का सूचक है।

किंतु शाहजहाँ की मृत्यु की अफवाह के बाद उसके पुत्रों के बीच राजसत्ता का संघर्ष प्रारंभ हुआ और यहीं से वैभवशाली साम्राज्य-प्रसाद का ह्रास शुरू हुआ। औरंगज़ेब (1658 ई. - 1707 ई.) द्वारा राजनीतिक महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर अपने पिता शाहजहाँ को बंदी बनाना, अपने भाइयों को कत्ल करवाना और सभी को अविश्वास की दृष्टि से देखना जग-विदित ही है। औरंगज़ेब की धर्मांधता और कट्टरता के साथ-साथ राज्य विस्तार की लिप्सा ने पहले तो राजनीतिक दीवारों मे दरार डाली और फिर यही खाई धीरे-धीरे बढ़ती चली गई। इसी अत्याचार के विद्रोह स्वरूप हिंदू-मुस्लिम नरेश सजग हुए। अस्तित्व रक्षा के लिए विद्रोह करती दक्षिण की मराठा-शक्ति तथा पंजाब की सिख-शक्ति का उदय हुआ।

औरंगज़ेब के बाद सन् 1707 ई. में उसके पुत्रों के बीच भी सत्ता-संघर्ष हुआ। औरंगज़ेब का दूसरा पुत्र मुअज्जम (शाहआलम प्रथम) विजयी होकर गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता की तुलना में कुछ उदार था। किंतु पाँच वर्ष के शासनोपरांत सन् 1712 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। अब मुगल साम्राज्य का पतन प्रारंभ हो गया। सन् 1759 ई. तक यही स्थिति बनी रही और संघर्ष या दैवी प्रकोप के कारण कोई भी शासक दीर्घकाल तक गद्दी पर न रह सका। परिणामतः विलास-भोग बढ़ता गया और अव्यवस्था तथा अशांति और बढ़ गई। छोटे-छोटे जागीरदार भी अब अपने को स्वतंत्र घोषित कर बैठे।

केवल मुगल राजनीति के ही नहीं, मराठों और सिखों की राजनीति के उत्थान-पतन भी इस युग को झेलने पड़े। भारतीय शासकों के बँटे होने के कारण रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में आते-आते अंग्रेज़ों की सत्ता का निरंतर विकास होता गया। परिणामतः मराठों और सिखों की पराजय के कारण लोगों में जीवन के प्रति अनास्था जगी तो विलास के प्रति आस्था प्रबल होने लगी। राजाओं के राजदरबार और नवाबों के महल विलासिता के अखाड़े बनकर रह गए। अस्थिरता से उदासीनता बढ़ी और असुरक्षा की भावना ने विलासिता को विस्तार दिया। मुगल दरबारों और अन्य प्रादेशिक शासकों की शान-ओ-शौकत तथा विलासिता की भावना ने युगीन वातावरण को इस रूप में उद्दीप्त कर दिया कि जन-जन की रुचि तथा चित्तवृत्ति शृंगारी होती चली गई। साहित्य तथा साहित्यकार इसी वातावरण तथा राजनीति का लाभ उठाने के लिए दरबारी बनने लगे।

अकबर से शाहजहाँ तक के शासनकाल में काव्य, स्थापत्य, संगीत, नृत्य और चित्रकलाओं का जो विकास और विस्तार हुआ था, वह अब लुप्त होने लगा। इस काल में देश ने 1739 ई. में नादिरशाही आक्रमण तथा 1761 ई. के अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण को झेला। शासन और साम्राज्य की नींव तो पूर्णतः हिल ही चुकी थी। परिणामतः अंग्रेज़ों ने लाभ उठाया और धीरे-धीरे शक्ति संचय करते हुए वे 1803 ई. तक लगभग पूरे भारत पर आधिपत्य जमा बैठे। अतः औरंगज़ेब के बाद की पुरुषार्थहीन, दब्बू तथा अशक्त शासकों और सामंतों की पीढ़ी ने सशक्त भारत को खोखला करवा दिया।

इस दौर के ढाई सौ वर्षों के विलास-वैभवपूर्ण मुगल साम्राज्य का अंत अत्यंत कारुणिक रहा। इसी प्रकार, अवध, राजस्थान तथा बुंदेलखंड के हिंदू रजवाड़ों तथा अवध के नवाबों का अंत भी विलास-भोग तथा षड्यंत्रों के कारण ही हुआ। स्पष्ट है कि ऐसी राजनीतिक चालों और गिरते हुए मूल्यों के बीच रचा गया रीतिकालीन साहित्य युग के राजाओं, नवाबों और आश्रयदाताओं के दरबार की नुमाइश बनकर ही रह गया।

8.3.2 सामाजिक परिस्थितियाँ

रीतिकालीन युग सामाजिक दृष्टि से भी घोर पतन का युग ही था। सामंतवादी समाज के सभी दोष इस युग में किसी न किसी रूप में विद्यमान थे। सत्ता-व्यवस्था में विवेकहीनता और अव्यवस्था का माहौल बना। भक्तिकालीन युग में तो छुआछूत, ऊँच-नीच के भेद को मिटाने का प्रयत्न भी होता रहा पर रीतिकाल तक आते-आते तो जन-सामान्य का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि वर्गों में विभाजन और दृढ़ हो गया। इसी प्रकार, व्यवसाय के आधार पर भी सुनार, लुहार, बढ़ई, माली, दर्जी, जुलाहा, पासी आदि जातियों में समाज का बँटवारा हो चुका था। खान-पान, विवाह आदि अपनी ही जाति के लोगों तक सीमित हो गया था। समाज अनास्था, अराजकता और कुंठाओं से ग्रस्त होता जा रहा था। ब्राह्मणों का अन्य जातियों पर प्रभुत्व था। महत्वपूर्ण पदों पर ब्राह्मण आसीन थे। राजाओं और जागीरदारों से उन्हें कर्मकांडों के बदले में अपार धन मिलता था। मंदिरों और मठों की संपत्ति पर उनका अधिकार था। ब्राह्मणों की प्राचीन तेजस्विता और त्याग-वृत्ति प्रायः समाप्त हो रही थी।

क्षत्रिय विभिन्न राज्यों की सेनाओं में ऊँचे पदों पर नियुक्त थे। किसी जाति के रूप में क्षत्रियों का गौरव भी कम होता जा रहा था। अधिकांश क्षत्रिय विलासिता का जीवन जीने लगे थे। सुरा-सुराही ने उन्हें अपने आगोश में ले लिया था। वैश्यों और शूद्रों की स्थिति भी अच्छी न थी। उद्योगों और व्यापारों के नष्ट होने से वैश्य संपन्न नहीं रह गए थे। शूद्र सवर्ण जातियों की सेवा से अपनी जीविका चला रहे थे। शूद्र समाज में उपेक्षित थे।

समाज में बाल विवाह प्रथा तेजी पर थी। दिखावा और नाच-गान, ब्राह्मणों को दान देने का नियम, बहु-विवाह प्रथा, सती प्रथा, लोक मर्यादा का भय आदि कई सामाजिक दोष पनप रहे थे। स्त्रियों की परदा प्रथा, जन-सामान्य का अंधविश्वासी होना, रूढ़िवादिता का चहुँमुखी फैलना, शुभ-अशुभ, मुहूर्त, झाड़-फूँक, भूत-प्रेत आदि विश्वासों में जन-जन पिस रहा था। बलि की प्रथा प्रचलन में थी।

ज्योतिषियों ने समाज को जी भर कर लूटना प्रारंभ कर दिया था। दास-प्रथा भी सन् 1843 ई. तक समाज को ग्रस रही थी। ऋण न चुका पाने पर दास खरीदे-बेचे जाते थे। फिर आजन्म वे मालिक की सेवा करते थे।

शिक्षा की दृष्टि से भी समाज विघटन की ओर उन्मुख था। आश्रम और गुरुकुल समाप्त हो गए थे। उच्च वर्ग के हिंदुओं के लिए संस्कृत पाठशालाएँ थीं, पर शेष वर्ग के लिए नहीं। धर्म-दर्शन और विज्ञान आदि का अध्ययन-अध्यापन बहुत कम जगहों पर था। अधिकांशतः लोग साधारण शिक्षा प्राप्त कर पैतृक-व्यवसाय में लग जाते थे। स्त्री-शिक्षा का प्रचलन ही न था। उनके लिए पत्नीत्व और मातृत्व ही चरम लक्ष्य था।

धनी वर्ग की स्त्रियाँ दिखावटी वस्त्राभूषण और साज-सज्जा में लीन रहती थीं। शृंगार-बनाव की प्रवृत्ति जोरों पर थी। समाज पर संभ्रांत वर्गों का प्रभुत्व था। धनाधिक्य ने इन्हें विलासी तथा दुराग्रही बना दिया था। यही कारण है कि कवि या लेखक जिस साहित्य का सृजन कर रहे थे वह जन-सामान्य का साहित्य न था। जीवन का कोई निश्चित लक्ष्य निर्धारित न होने पर जनता भी शासक वर्ग की देखा-देखी विलासोन्मुख होती जा रही थी। नारी विलासिता की वस्तु बनती जा रही थी। कला, संस्कृति, व्यापार, अर्थव्यवस्था, सामाजिक मानदंड, आचार-विचार सभी संकटों से गुजर रहे थे। अतः सामाजिक जीवन निरंतर ह्रासोन्मुख होता जा रहा था। जनता भाग्यवादी और अकर्मण्यवादी होती चली गई। नैतिक मूल्य समाप्त होते चले गए। सुरा-सुराही-सुंदरी की उपासना जोर-शोर से होने लगी। युवक, राजापुत्र आदि तीतर-बटेर पालने-लड़ाने में डूब गए। कुल मिलाकर दुराचार, अनाचार और व्यभिचार के इस युग में सामाजिक-व्यवस्था पूरी तरह बिखर गई थी।

8.3.3 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

रीतिकालीन युग में नैतिकता के सभी मापदंड तो समाप्त हो ही चुके थे, धार्मिक स्थितियाँ भी आदर्श-विमुख थीं। शाहजहाँ के समय तक चली आ रही धार्मिक सहिष्णुता को औरंगज़ेब ने खंडित किया तो रीतिकाल तक वह क्रमशः और खंडित होती चली गई। धर्म की उदात्तता नष्ट हो गई। विलास-वासनाओं और ऐहिक संपूर्तियों ने धर्म को आच्छादित कर लिया। बाह्याडंबरों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों और धार्मिक अनाचारों ने जन-सामान्य को ठगना प्रारंभ कर दिया। अधकचरे पंडितों, मौलवियों और ढोंगी साधु-संतों ने धार्मिक असंगतियों तथा दुराग्रहों से समाज को ग्रसना प्रारंभ कर दिया। जन-समाज बहकावे में आकर लिप्सा-ग्रस्त होने लगा। भक्तिभाव मांसल तथा ऐंद्रिक बनते चले गए। राधा-कृष्ण सुमिरन का बहाना लेकर उनकी लीलाओं की आड़ में समाज की कुत्सित भावनाएँ प्रदर्शित होने लगीं। अनाचार धार्मिक आड़ में फलने-फूलने लगे।

हिंदू और इस्लाम धर्मों के बीच एक स्पष्ट विभाजक रेखा खिंच गई। हिंदू धर्म अनेक साधना-पद्धतियों में लीन हो गया। वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अनेक पंथ और तैंतीस करोड़ देवी-देवता – हिंदुओं की आस्था के लक्ष्य बन गए। हिंदू धर्म के उपासना केंद्र मंदिर थे और वे राजमहलों के से वैभव से संपन्न थे। परवर्ती दौर में बौद्ध धर्म में भी अनेक विभाजन-उपविभाजन हो गए। वहाँ वामाचार का प्रवेश हो गया। मंदिर-मस्जिद राजमहलों द्वारा नियंत्रित थे।

राजसत्ता धर्म का उपयोग अपनी हित-साधना के लिए कर रही थी। मुल्ला-मौलवी तथा पुरोहित-पुजारी उनकी हित-पूर्ति में ही अपना स्वार्थ साध रहे थे। यही कारण है कि 'श्रीमद् भागवत्' के बाल और किशोर कृष्ण भक्तिकाल के उपास्य न रहकर धीरे-धीरे भौतिक धरातल पर आ जाते हैं और युवकोचित लीलाएँ और चेष्टाएँ करते हैं। मंदिरों में धर्म और संस्कृति को संरक्षण मिलना बंद हो जाता है। पूर्व-प्रचलित सभी संप्रदाय कलुषित-वासनाओं में डूबने लगे। भक्ति-रस स्थूल शृंगारिकता में परिणत हो गया। अतः यह युग धर्म की निरंतर ह्रासोन्मुखता का युग बन गया। सखी-संप्रदाय के भक्तों ने इस युग में राम-सीता की शृंगारी लीलाओं का भी वर्णन किया। अयोध्या, जनकपुर और चित्रकूट रामभक्ति के संप्रदायों के प्रमुख केंद्र बने रहे।

कृष्णभक्ति संप्रदायों में भक्तिकालीन संप्रदायों के अतिरिक्त एक 'ललित संप्रदाय' की स्थापना भी हुई। इसके संस्थापक थे वंशी-अलि जी। कृष्ण संप्रदायों की भक्ति का केंद्र मथुरा और वृंदावन ही बना रहा। निर्गुण भक्ति संप्रदाय भी रीतिकाल में चलते रहे। धामी संप्रदाय, सतनामी संप्रदाय, चरणदासी संप्रदाय तथा गरीब पंथ आदि कई नए संप्रदाय भी प्रारंभ हुए। इन सभी का मूलाधार निर्गुण-भक्ति साधना ही रहा। इन संप्रदायों के भक्तों की विचारधारा युगीन परिस्थितियों से पूर्णतः प्रभावित थी। इनकी साधना-पद्धति में भी पर्याप्त बदलाव आ गया था।

ऐसे धार्मिक-पतन के युग में कला और साहित्य भी दरबारी बन गए थे। ये आश्रयदाताओं के संकेतों पर थिरकने लगे थे। शृंगार अपनी शुचिता से विलासिता तक पहुँच गया था। रीतिकालीन शृंगार-साहित्य इसी तथ्य का प्रामाणिक ब्यौरा बनता है। वास्तव में रीतिकालीन साहित्य समस्त समाज का दर्पण न होकर तत्कालीन सामंती समाज का प्रतिबिंब है। जन-सामान्य से तो इस युग का साहित्य विमुख-सा ही रहा है।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी रीतिकाल का युग अत्यंत असंतुलित व्यवस्था का सूचक है। भक्तिकालीन संतों-सूफियों के हिंदू-मुस्लिम एकता के सभी प्रयासों पर इस युग में आकर पानी फिर गया था। हिंदू-मुस्लिम औरंगज़ेब की कट्टर धर्म-नीति के कारण एक दूसरे से विमुख होने लगे थे। पारस्परिक आदान-प्रदान तथा सांस्कृतिक मेल-जोल में अंतराल आने लगा था। एक-दूसरे के धर्म को समझने के, उनके प्रति आस्था और विश्वास के सभी प्रयत्न कम होते चले गए। संप्रदायों की दृष्टि अब तत्वचिंतन की न रहकर भौतिक होने लगी। जीवन की सभी गतिविधियाँ अपनी वास्तविकता से दूर होती जा रही थीं। मंदिरों की सांस्कृतिक गरिमा अब प्रायः समाप्त हो चुकी थी। आस्था और विश्वास के अर्थ अब बदल चुके थे। मंदिरों के सेवकों का दासी-गोपी भाव अब रानियों-सखियों और दास-दासियों में बदलने लगा था। परस्पर सौहार्द भावना कम होने लगी थी। धर्म के मूलभूत सिद्धांत बदलते जा रहे थे और बाह्याडम्बरों ने जन-सामान्य को पथभ्रष्ट करने में कोई कसर न रखी थी। पुरानी परंपराओं के पीर और सूफ़ी या संत और साधु अब विरले ही दिखाई पड़ते थे।

बोध प्रश्न 1

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति दिए गए विकल्पों में से करें।

(i) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में रीतिकालीन कवियों को .... भागों में बाँटा है।

(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) छह

(ii) द्विजदेव .... कवि थे।

(क) रीतिबद्ध (ख) रीतिसिद्ध (ग) रीतिमुक्त (घ) इनमें से कोई नहीं

(iii) रीतिकाल में राधा-कृष्ण का .... वर्णन प्रमुख हो गया।

(क) भक्तिपरक (ख) सामाजिक (ग) श्रृंगारिक (घ) इनमें से कोई नहीं

(iv) .... रीतिकालीन काव्य के संवेदना का अंग नहीं है।

(क) श्रृंगार (ख) राजप्रशस्ति (ग) नीति (घ) नवगीत

(v) इनमें से रीतिमुक्त कवि कौन थे?

(क) मतिराम (ख) आलम (ग) भूषण (घ) बिहारी

(ख) रीतिकाल की सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का वर्णन दस पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

(ग) रीतिकाव्य का वर्गीकरण करते हुए प्रत्येक वर्ग के दो-दो कवियों के नामों का उल्लेख कीजिए। (अपना उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

8.4 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

रीतिकालीन काव्य में जितनी भी मुख्य तथा गौण प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं उन सबकी विषय, वर्णन-शैली आदि की दृष्टि से अपनी-अपनी विशेषताएँ रही हैं, अतः प्रत्येक प्रवृत्ति की विशेषताओं पर पृथक-पृथक विचार कर लेना भी उचित होगा।

8.4.1 रीति निरूपण

रीति-निरूपण की समस्त अंतःप्रवृत्तियों का अध्ययन करने पर इनमें कतिपय सामान्य विशेषताएँ दिखाई देती हैं। इनमें सबसे पहली तो यही है कि इस काल के समस्त रीतिकवियों ने अपने ग्रंथों का निर्माण सामान्य पाठकों को काव्यशास्त्र का ज्ञान कराने के लिए किया है अतएव सुबोधता, सुकंठता और सरलता का ध्यान रखते हुए ही इनमें संस्कृत-काव्यशास्त्र में प्रचलित विभिन्न शैलियों का अनुसरण किया गया है। इस प्रवृत्ति की दूसरी विशेषता यह है कि विवेचन के लिए संस्कृत काव्यशास्त्र के उन्हीं ग्रंथों को आधार बनाया गया है जो आठवीं-नौवीं शताब्दी के बाद विवेचन की व्यवस्था और सुबोधता के कारण एक प्रकार के पाठ्यग्रंथ बन चुके थे – इनके भीतर दिए गए लक्षणों का ब्रजभाषा में रूपांतरण करने का ही प्रयत्न रीतिकवियों ने किया है। इस प्रकार इस युग के रचयिताओं ने आचार्य-कर्म की अपेक्षा कवि-शिक्षक के कर्म का ही निर्वाह किया है और सीमाओं के रहते हुए भी कुल मिलाकर इस दिशा में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। तीसरी विशेषता यह है कि काव्य के विभिन्न अंगों का मनोयोगपूर्वक निरूपण करते हुए भी ये लोग मूल रूप से रसवादी थे। इसीलिए इनके लक्षणों और उदाहरणों में सिद्धांत और व्यवहार, दोनों की दृष्टि से रसवाद की स्थापना देखने को मिलती है।

8.4.2 शृंगारिकता

शृंगारिकता की प्रवृत्ति रीतिकवियों की कविता का प्राण है। रीति-निरूपण की प्रवृत्ति के समान इसके भीतर भी कतिपय सामान्य विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। इनमें पहली तो यही है कि काव्यशास्त्र के बंधनों के निर्वाह तथा नैतिक बंधनों की छूट और विलासी आश्रयदाताओं से प्रोत्साहन के कारण इस प्रवृत्ति ने जो स्वरूप प्राप्त किया उसे कवियों की शृंगारिक प्रवृत्ति से अलग करके सहज ही देखा जा सकता है। काव्यशास्त्रीय बंधनों ने इस कविता को इतना रूढ़ बना दिया है कि शृंगार रस के विभिन्न अंगों और उपांगों के आधार पर इन रचनाओं के पृथक-पृथक वर्ग बनाये जा सकते हैं। ऐसा लगता है कि इन कवियों के पास प्रत्येक वर्ग से संबंधित साँचे हैं जिनमें ढालकर इसे बनाया गया है। दूसरी ओर नैतिक बंधनों की छूट और आश्रयदाताओं से प्रोत्साहन के कारण इन कवियों ने अपनी कल्पना के पंख इतने फैलाये हैं कि इन रचनाओं से उनकी अभिरुचि और दृष्टि का आभास स्वतः हो जाता है। इस प्रवृत्ति की दूसरी विशेषता यह है कि इस कविता में काम भावना के दमन से उत्पन्न मानसिक ग्रंथियाँ न होकर शरीर-सुख की वह साधना है जिसमें व्यक्ति की दृष्टि विलास के उपकरणों को एकत्र करने पर ही केंद्रित रहती है। यही कारण है कि संयोग के नग्न चित्रों तथा नायकों की धृष्टताओं के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करते समय किसी भी प्रकार का संकोच नहीं किया गया। इस प्रवृत्ति की तीसरी विशेषता यह है कि विलासिता के प्राधान्य के कारण प्रेम-भावना में एकनिष्ठता के स्थान पर अनेकोन्मुखता ने स्थान ले लिया है जिसके परिणामस्वरूप कुंठा रहित प्रेम की उन्मुक्तता रसिकता का रूप धारण कर गई है। इस प्रवृत्ति की चौथी विशेषता यह कही जा सकती है कि ज्यादातर नारी के प्रति सामंती दृष्टि रहने के कारण नारी का समाज की चेतन इकाई अथवा पुरुष का अर्द्धांग समझने के स्थान पर उसे उसका भोग्य

उपकरण मात्र समझ लिया गया है, परिणामतः स्त्री की समस्त चेष्टाएँ और भावनाएँ मात्र उसकी काम-भावना की अभिव्यक्ति समझ ली गई हैं तथा उनके प्रति सहानुभूति के स्थान पर नायकों का कौतूहल का भाव व्यक्त किया गया है। कदाचित् इसीलिए विरह संबंधी रचनाएँ प्रभावहीन हो गई हैं। इस प्रवृत्ति के विषय में पाँचवीं बात यह कही जा सकती है कि इस युग के पुरुष की दृष्टि प्रायः इतनी विलासपूर्ण रही है कि नारी के रूप और गुणों के स्थान पर उसके मांसल शरीर की बनावट पर ही पुरुष की दृष्टि केंद्रित रही है। किंतु यह सब होते हुए भी इस प्रवृत्ति में छठी विशेषता के रूप में यह बात देखने को मिलती है कि इस काल की कविताओं में व्यापक रूप से इंद्रिय दमन-जन्य कुंठा का अभाव, शरीर-सुख की साधना, अनेकोन्मुख प्रेम-जन्य रसिकता, रूपलिप्सा, भोगेच्छा, नारी के प्रति सामंतीय दृष्टि तथा गार्हस्थिक प्रेम का समावेश कुछ इस प्रकार से हुआ है कि काव्यशास्त्रीय बंधनों के रहते हुए भी इससे संबद्ध (शृंगारिक) कविता पाठक को आनंदमग्न कर देती है।

इस युग में लिखी गई कविताओं में प्रेम का उन्मुक्त चित्रण मिलता है, जो सामंती परिवेश में अंकुरित और पुष्पित होने के बावजूद स्त्री-पुरुष के बीच के स्वाभाविक आकर्षण को उजागर करता है। स्त्री-पुरुष आपस में प्रेम करते हैं जो उस समय की सामंती परिवेश के प्रति एक प्रकार का प्रतिरोध भी है। बिहारी के निम्नलिखित दोहे को गौर से पढ़िए :

> कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
> भरे भौन मैं करत हैं नैननु हीं सब बात।।

यहाँ स्त्री-पुरुष एक-दूसरे से भरे हुए भवन में आँखों के माध्यम से प्रेम-संवाद कर रहे हैं। चूँकि प्रेम करना आज भी एक साहसिक कार्य है जिसे भारतीय समाज पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करता। मध्ययुग में प्रेम की यह भावना कवि के साहस का परिचय है। इसके साथ ही रीतिकालीन कविता में गार्हस्थ्य प्रेम की भी सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरणस्वरूप :

> आँखिन मुँदिबे के मिस आनि, अचानक पीठी उरोज लगावै।
> कैहूँ कहूँ मुसकाय चितै, अगराय अनुपम अंग दिखावै।।
> नाह हुई छल सौ छतियाँ, हँसि भौंह चढ़ाय आनंद बढ़ावै।
> जोबन के मद मत्त तिया, हित सों पति का नित चित्त चुरावै।

इसी प्रकार रीतिकाव्य में गार्हस्थ्य प्रेम के पश्चात विवाहेतर प्रेम का भी चित्रण हुआ है। स्वच्छंद प्रेम का चित्रण घनानंद, बोधा, ठाकुर आदि की कविताओं में स्पष्ट रूप से सामने आता है जिनमें प्रेम के उदात्त रूप की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम को मनुष्य का शाश्वत स्वभाव माना गया है। घनानंद की निम्नलिखित पंक्तियों में प्रेम की बारीकी तथा प्रेमी के विरह के साथ उसके हृदय की विशालता भी सामने आती है :

> तब तौ छबि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात जरे।
> हित पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महा दुख दोष भरे।
> घन आनंद मीत सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।
> तब हार पठार से लागत हे अब आनि के बीच पहार परे।

उपरोक्त पंक्ति में वियोग की अवस्था के साथ संयोग के दिनों की स्मृति की अभिव्यक्ति हुई है। संयोग के दिनों में प्रेमी प्रेमिका के रूप को देख-देखकर जी रहा था; अब वियोग के दिनों में उन दिनों की बातें याद करने पर आँख जलने लगती है, अर्थात मन दुख से भर जाता है। प्रेमिका से प्रेम का प्रतिदान मिलने पर प्राण तृप्त हो जाता था, अब वह अत्यंत पीड़ा से व्याकुल हो रहा है। घनानंद कहते हैं कि प्रेमिका सुजान के बिना हर सुख, ताम-झाम, लोग व्यर्थ

लगता है। परस्पर प्रेम के दिनों में प्रेमिका के गले की माला भी पहाड़ सी लगती थी, अब तो उन दोनों के बीच पहाड़ खड़ा हो गया है, बहुत सी बाधाएँ आ गई हैं।

8.4.3 रीति-इतर काव्य

रीति काव्य की गौण प्रवृत्तियों में से एक राजप्रशस्ति संबंधी प्रवृत्ति की मुख्य विशेषता यह है कि कवियों ने सामान्य रूप से अपने आश्रयदाताओं के शौर्य और पराक्रम तथा उनकी दानशीलता आदि कतिपय गुणों का वर्णन किया है। इनमें शौर्य-पराक्रम के स्थान पर उनके आतंक तथा उनके दान के व्यापार के स्थान पर दान की सामग्री की विपुलता का वर्णन ही कवियों का अभीष्ट प्रतीत होता है। इसीलिए इस कविता में झूठी प्रशस्ति द्वारा धन ऐंठने की भावना का अनुभव अधिक होता है, आश्रयदाता के प्रति श्रद्धा के भाव की कम अनुभूति होती है।

भक्ति की प्रवृत्ति के वैशिष्ट्य के विषय में केवल यही कहा जा सकता है कि परंपरागत आस्थाओं और विश्वासों के कारण इस काल की भक्तिपरक कविता कवियों की धार्मिक भावना का परिचायक होने के साथ-साथ देवी-देवताओं की शरण में जाकर अपने संकट-निवारण की प्रार्थना तथा आत्मशांति की खोज के प्रयत्न को प्रकट करती है। इसी प्रकार नीति की प्रवृत्ति में आत्मबोध तथा अपने इष्ट मित्रों अथवा पक्ष के लोगों के लाभ के लिए अपने अनुभवों को स्पष्ट रूप से अथवा अन्योक्तियों द्वारा प्रच्छन्न रूप से प्रकट करने का प्रयास रहा है। भक्ति के समान काव्यशास्त्रीय नियमों से बँधी नीतिपरक रचनाएँ इस काल के रीति ग्रंथों तथा रीति की परिपाटी में बद्ध ग्रंथों में मिलती है। किंतु इनमें दो प्रकार की अंतःप्रवृत्तियाँ स्पष्ट हैं। इनमें प्रथम अंतःप्रवृत्ति की परिचायक वे रचनाएँ कही जा सकती हैं जिनमें कवि अपने जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों अथवा महापुरुषों की वाणी के आधार पर व्यक्ति को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध कराता है अथवा अपने आपको संबोधित करता है। इनमें वृंद की 'सतसई' तो प्रसिद्ध है ही, अन्य सतसई ग्रंथों तथा अलंकार-निरूपण संबंधी ग्रंथों के कतिपय छंदों में भी इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। दूसरी अंतःप्रवृत्ति उन रचनाओं की कही जा सकती है जिनमें कवि अन्योक्ति अलंकार की सहायता से किसी व्यक्ति को सावधान करता है अथवा कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध कराता है। ये रचनाएँ अधिकांशतः उस युग के दरबारी वातावरण में लिखी गई हैं जहाँ कोई व्यक्ति शासक के कोप के भय से स्पष्टतः कुछ कहना नहीं चाहता था। शेष गौण प्रवृत्तियों में प्रकृति को श्रृंगार रस की उद्दीपक सामग्री के रूप में प्रस्तुत किये जाने के सिवाय और कोई विशेषता दृष्टिगत नहीं होती।

बोध प्रश्न 2

(क) निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) के निशान लगाइए।

(i) रीतिकाव्य के आचार्यों ने संस्कृत-काव्यशास्त्र का अनुसरण किया।

(ii) रीतिकाव्य की श्रृंगारिकता में कुंठा रहित प्रेम की उन्मुक्त रसिकता का वर्णन हुआ है।

(iii) 'तब तौ छवि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात जरे' – इस काव्य-पंक्ति के लेखक मतिराम हैं।

(iv) रीति इतर काव्यों में वृंद की 'सतसई' एक प्रमुख रचना है।

(v) राजप्रशस्ति रीतिकाव्य की केंद्रीय प्रवृत्ति है।

(ख) रीतिकाल की निम्नलिखित प्रवृत्तियों पर पाँच-पाँच पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

(i) रीति निरूपण

....

....

....

....

....

(ii) रीतिइतर काव्य

....

....

....

....

....

(ग) रीतिकालीन श्रृंगारिकता की विशिष्टताओं का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

8.5 सारांश

- रीतिकालीन काव्य मुख्य रूप से राजदरबारों तक सीमित काव्य है जिसकी विषय-वस्तु सामंतों और दरबारियों के मनोनुकूल है। हालाँकि इसी समय घनानंद आदि कुछ ऐसे कवि भी हुए जिनकी कविताओं में स्वच्छंद प्रेम और विरह की अभिव्यक्ति हुई है। साथ ही रीतिकालीन काव्य में गार्हस्थ्य प्रेम का भी सुंदर चित्रण हुआ है।

- राजनीतिक रूप से यह दौर उथल-पुथल का दौर था जिसका प्रभाव संस्कृति और साहित्य पर भी पड़ा। सत्ता और समाज में सामंतों का बोलबाला था। भोगवादी प्रवृत्ति बढ़ गई थी। भक्तिकाल में राधा-कृष्ण के माध्यम से भक्ति की रागमयता की अभिव्यक्ति की जा रही थी। रीतिकालीन काव्य में राधा-कृष्ण के ईश्वरत्व का लोप हो गया। वे श्रृंगारिक अभिव्यक्तियों के नायक-नायिका बन गए।
- रीतिकाल में मुख्य रूप से प्रेम और श्रृंगार की कविताएँ लिखी गईं। इससे इतर सबसे प्रमुख प्रवृत्ति राजप्रशस्ति की थी। भूषण इस प्रवृत्ति के प्रमुख कवि हुए। इसके अतिरिक्त नीति विषयक और धार्मिक कविताएँ भी लिखी गईं।
- इस काल में कविता में चमत्कार भाव मिलता है और इसे सुनकर श्रोतावर्ग चमत्कृत हो उठता है।

8.6 उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी साहित्य का इतिहास*, संपादक – डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- *हिंदी साहित्य का अतीत (दूसरा भाग)* – आचार्य विश्वनाश प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- *रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन* – डॉ. रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, इलाहाबाद
- *रीतिकाव्य की भूमिका* – डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(क) (i) (क)

(ii) (ग)

(iii) (ग)

(iv) (घ)

(v) (ख)

(ख) देखिए–भाग 8.3.2 तथा भाग 8.3.3

(ग) देखिए–भाग 8.2.2

बोध प्रश्न 2

(क) (i) ✓

(ii) ✓

(iii) ×

(iv) ✓

(v) ×

(ख) देखिए–भाग 8.4.1 तथा भाग 8.4.3

(ग) देखिए–भाग 8.4.2

इकाई 9 रीतिकाव्य के प्रमुख कवि

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 रीतिकाव्य के प्रमुख कवि

9.2.1 रीतिबद्ध कवि

9.2.2 रीतिसिद्ध कवि

9.2.3 रीतिमुक्त कवि

9.3 सारांश

9.4 उपयोगी पुस्तकें

9.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ्यक्रम की यह नवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- हिंदी के प्रमुख रीतिबद्ध कवियों तथा उनके योगदान के बारे में जानकारी दे पाएँगे;
- हिंदी के प्रमुख रीतिसिद्ध कवि बिहारी की विशिष्टताओं के बारे में बता पाएँगे तथा
- विभिन्न रीतिमुक्त कवियों तथा उनकी काव्यगत विशिष्टताओं पर प्रकाश डाल पाएँगे।

9.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के रीतिकाल में मुख्यतः तीन प्रकार के कवि हुए – रीतिबद्ध कवि, रीतिसिद्ध कवि तथा रीतिमुक्त कवि। रीतिबद्ध कवियों ने काव्य-लक्षण संबंधित ग्रंथों की रचना की तथा लक्षणों के स्वरूप पर प्रकाश डालने के साथ ही उदाहरण के रूप में कविताओं की भी रचना की। रीतिबद्ध कवि 'आचार्य' भी कहलाए। इन आचार्य कवियों की कई कोटियाँ हैं। इस पाठ में आगे इसके बारे में जानकारी दी जा रही है। रीतिसिद्ध कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना नहीं की, लेकिन संवेदना, विषय-वस्तु के स्तर पर इनकी कविताएँ 'रीति' की परंपरा के अनुकूल है। रीतिमुक्त कवि रीतिकाल के दौर में ही काव्य-रचना कर रहे वे कवि थे जिन्होंने रीतिकालीन विषय-वस्तु के अनुरूप रचना न कर, स्वच्छंदता का मार्ग अपनाया। इन्होंने अपनी कविताओं में निजी प्रेमानुभूति को पिरोया। आगे रीतिकाव्य के इन सभी (तीनों) कोटियों के प्रमुख कवियों के बारे में जानकारी दी जा रही है।

9.2 रीतिकाव्य के प्रमुख कवि

रीतिकाल में तीन तरह के कवि हुए – रीतिबद्ध कवि, रीतिसिद्ध कवि तथा रीतिमुक्त कवि। पूरी रीतिबद्ध कविता एक समान नहीं है। रीतिबद्ध कविता लिखने वाले आचार्य कवियों की भी कई कोटियाँ हैं।

इनके विभिन्न रूपों को नीचे चार्ट द्वारा दर्शाया जा रहा है :

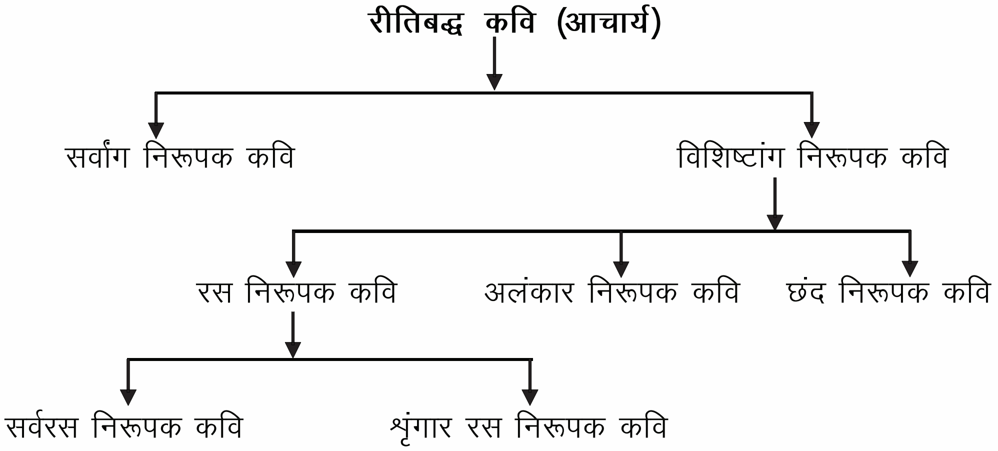

सर्वांग निरूपक कवि – इस कोटि के कवियों ने काव्य के सभी अंगों– रस, अलंकार, छंद आदि की व्याख्या की और उदाहरण के लिए कविताएँ भी लिखीं। इनमें प्रमुख हैं – चिंतामणि, कुलपति मिश्र, देव, भिखारीदास आदि।

विशिष्टांग निरूपक कवि – इस कोटि के कवियों ने काव्य के एक या एकाधिक अंगों की विवेचना की परंतु इनके आचार्यत्व और कविता कर्म के दायरे में काव्य के सभी अंग नहीं आ सके। उदाहरणस्वरूप 'भाषा भूषण' के रचयिता जसवंत सिंह, 'शिवराज भूषण' के रचयिता भूषण को काव्य के एक विशिष्ट अंग अलंकार के निरूपक आचार्य के रूप में जाना गया; जबकि मतिराम ने अलंकार पर 'ललितललाम' तथा श्रृंगार-रस पर 'रसराज' नामक ग्रंथ लिखा पर एकाधिक अंग पर लिखने के बावजूद उन्हें विशिष्टांग निरूपक कवि के रूप में जाना गया। इसका कारण यह है कि रस विवेचन में मतिरास श्रृंगार रस तक ही सीमित रहे।

विशिष्टांग निरूपक कवियों को वर्ण्य-विषय के अनुसार निम्न कोटियों में बाँटा गया है :

रस निरूपक कवि – इस कोटि के कवियों ने अपने आचार्यत्व और कवित्व का आधार रस को बनाया। इनके भी दो प्रकार हैं :

सर्वरस निरूपक कवि – इस कोटि के रस निरूपक कवियों ने श्रृंगार, वीर आदि सभी रसों का विवेचन किया और एतद्विषयक कविताएँ लिखीं। इस कोटि के कवियों में पद्माकर, रसलीन, बेनी प्रवीन आदि प्रमुख हैं।

श्रृंगार निरूपक कवि – रीतिकाव्य में श्रृंगार रस का प्रभाव सबसे ज्यादा है। बहुधा सर्वरस निरूपक कवियों ने भी श्रृंगार रस को प्रमुखता दी है। इस कोटि के कवियों ने श्रृंगार रस में भी नायक-नायिका भेद को सर्वाधिक महत्व दिया। इस कोटि के प्रमुख कवि हैं – मतिराम, कृष्णदेव भट्ट आदि।

अलंकार निरूपक कवि – रीति निरूपण में रस के बाद जिस काव्यांग को सर्वाधिक महत्व मिला वह अलंकार है। अलंकार के माध्यम से रीति युगीन आचार्यों को काव्य-चमत्कार पैदा करने की सहूलियत मिली। अलंकार निरूपक कवियों में प्रमुख हैं– महाराजा जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण, पद्माकर, गोप आदि।

छंद निरूपक कवि – इस कोटि के कवियों ने छंद के विभिन्न रूपों का विश्लेषण किया और कविताएँ लिखीं। हालाँकि कवित्व की दृष्टि से आज उनका विशेष उल्लेख नहीं किया जाता है। मुरलीधर 'भूषण', सुखदेव मिश्र आदि प्रमुख छंद निरूपक कवि हैं।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

9.2.1 रीतिबद्ध कवि

हिंदी साहित्य में रीति निरूपण का प्रथम प्रयास भक्तिकाल के दौर में ही प्रारंभ हो गया था। विशेष रूप से रीति निरूपण की प्रवृत्ति सबसे पहले केशवदास में दिखायी देती है। इनका समय सन् 1555 ई. से सन् 1617 ई. के बीच था। वैसे रीतिकाव्य की अविच्छिन्न परंपरा चिंतामणि त्रिपाठी से शुरू हुई जिनका समय केशवदास के 50 वर्ष बाद आता है। संभवतः केशवदास और चिंतामणि के बीच के समय में रीतिकाव्य की अनुपस्थिति के कारण ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में रीतिग्रंथकार कवियों की शुरुआत चिंतामणि से किया है और केशवदास को भक्तिकाल के फुटकल कवियों में रखा है। हालाँकि इसे दोहराए जाने का अब कोई औचित्य नहीं है क्योंकि उनका (आचार्य केशवदास) मुख्य रुझान 'रीति' ही है। उनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचंद्रिका' में अलंकार बहुलता और चमत्कारप्रियता उनके रीतिगत रुझान को ही दर्शाता है। अतः यहाँ रीतिबद्ध कवियों के बारे में जानकारी केशवदास से शुरू की जा रही है।

आचार्य केशवदास

केशवदास का जन्म सन् 1555 ई. तथा मृत्यु सन् 1617 ई. के आसपास हुई। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें भक्तियुग के फुटकल कवियों में रखा है, परंतु इनकी कविता के स्वरूप को देखते हुए इन्हें रीतियुगीन आचार्यों में रखा जाना चाहिए, इसके बावजूद कि इनकी मौजूदगी रीतिकाल से पूर्व की है। इनके द्वारा रचित रीतिग्रंथों में प्रमुख हैं — 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' और 'छंदमाला'। 'रसिकप्रिया' में सभी रसों का वर्णन है। 'कविप्रिया' अलंकार निरूपक ग्रंथ है, जबकि 'छंदमाला' में छंदों का निरूपण किया गया है। विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, ''केशव का महत्व इस बात में है कि उन्होंने पहली बार संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित काव्यांगों पर हिंदी में विचार किया। इसके पूर्व कृपाराम, मोहनलाल मिश्र, करनेस आदि ने रस, शृंगार और अलंकार पर अलग-अलग पुस्तकें लिखीं थीं, पर एक साथ सभी काव्यांगों का परिचय नहीं दिया था। केशव ने यही किया और इसीलिए वे हिंदी के पहले आचार्य माने जाते हैं।''

चिंतामणि

चिंतामणि का जन्म 1600 ई. के आसपास तथा इनकी मृत्यु 1680 ई. के आसपास हुई। रीतिकाल की अविच्छिन्न परंपरा चिंतामणि से ही प्रारंभ हुई। चिंतामणि की गणना सर्वांग निरूपक आचार्य-कवि के रूप में की जाती है। इनके ग्रंथों में 'रस विलास', 'कविकुल कल्पतरु', 'काव्य विवेक', 'काव्य प्रकाश' आदि प्रमुख हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें उत्कृष्ट कवि कहा है। इनकी कविता से भी इसकी पुष्टि होती है :

> आँखिन मुँदिबे के मिस आनि, अचानक पीठि उरोज लगावै।
> कैहूँ कहूँ मुसकाय चितै, अगराय अनुपम अंग दिखावै।।
> नाह छुई छल सौ छतियाँ, हँसि भौंह चढ़ाय आनंद बढ़ावै।
> जोबन के मद मत्त तिया, हित सों पति का नित चित्त चुरावै।।

इस मुक्तक में गार्हस्थ्य प्रेम का सुंदर और मनोहारी चित्रण हुआ है। पत्नी आँख बंद करने के बहाने पति का पीछे से आलिंगन करती है और पूछती है कि कहो मैं कौन हूँ? यह कहकर वह मुस्कुराती है, इठलाती है। पति द्वारा अंग छूने पर भौंह टेढ़ा कर हँसती है। यौवन के मस्ती में डूबी पत्नी अपने विभिन्न हाव-भाव से पति को निरंतर आकर्षित करती है।

देव

देव का जन्म 1673 ई. में हुआ था तथा इनकी मृत्यु 1767 ई. के आसपास हुई। देव रीति कविता के सर्वांग निरूपक आचार्यों में एक प्रमुख नाम हैं। देव के महत्व का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि द्विवेदी युग की हिंदी आलोचना में देव श्रेष्ठ हैं अथवा बिहारी, इस प्रश्न को लेकर आलोचकों में तीखा विवाद चला। देव के ग्रंथों की संख्या 72 बतलायी जाती है पर इनमें से ज्यादातर अनुपलब्ध है। इनके ग्रंथों में 'भाव विलास', 'रस विलास', 'शब्द रसायन', 'अष्टयाम' आदि प्रमुख हैं। देव जितने समर्थ आचार्य थे उतनी ही प्रखर उनकी काव्य-प्रतिभा भी थी। वे श्रृंगार विषयक कविता में तो सिद्धहस्त थे ही उन्होंने प्रकृति का भी सुंदर चित्रण किया है। एक उदाहरण देखिए :

झहरि झहरि झीनी बूँदनी परत मानो,
    घहरि-घहरि घटा छेरी है गगन में।
अनि कध्यो स्याम मोसौं 'चलो झूलिवे कौं' आज,
    फूली न समानी, भई ऐसी हौं मगन मैं।।

अर्थात आकाश में बादल की घटा घिर गई है, वर्षा की बूँदे झरने लगी हैं। ऐसे ही समय में श्याम आकर नायिका से आज झूला झूलने के लिए चलने को कहते हैं। नायिका इससे फूली नहीं समाती उसे अपनी सुध-बुध नहीं रहती।

विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, ''देव रीतिकाल के ऐसे दुर्लभ कवि हैं, जो रूढ़ियों की सहायता के बिना केवल स्थितियों की योजना से मार्मिकता पैदा करते हैं।'' प्रकृति और श्रृंगार के अतिरिक्त देव ने भक्ति तथा नीति विषयक कविताएँ भी लिखी हैं।

भिखारीदास

भिखारीदास सर्वांग निरूपक आचार्यों में सर्वप्रमुख हैं। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं – 'रस सारांश', 'श्रृंगार निर्णय', 'काव्यनिर्णय', 'छंदोर्णवपिंगल' आदि। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें 'ऊँचे दरजे' का कवि कहा है। भिखारीदास की प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, ''इनका 'श्रृंगार निर्णय' अपने ढंग का अनूठा काव्य है। उदाहरण मनोहर और सरस है। भाषा में शब्दाडंबर नहीं है। न ये शब्द चमत्कार पर टूटे हैं, न दूर की सूझ के लिए व्याकुल हुए हैं। इनकी रचना कलापक्ष में संयत और भाव पक्ष रंजनकारिणी है।'' संयोग- श्रृंगार की इस कविता में भावनात्मक सहजता को देखा जा सकता है :

वही घरी तें न सान रहे, न गुमान रहै, न रहै सुघराई।
दास न लाज को साज रहै न रहै तनकौ घर काज की घाई।।
हयाँ दिखसाध निवारे रहौ तब ही लौ भटू सब भाँति भलाई।
देखक कान्हैं न चेत रहै, नहिं चित्त रहै, न रहै चतुराई।।

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि कहता है कि जिस समय गोपियाँ कृष्ण को देखती हैं उसी समय वे अपना सुध-बुध खो देती हैं। उनमें किसी प्रकार का शान-गुमान नहीं बचता। उन्हें न अपने देह की फिक्र रहती है और न घर के काम काज की, उनका संकोच खत्म हो जाता है। गोपियाँ कहती हैं कि हे सखि जब तक देखने की साध बनी रहे तभी तक भलाई है। कान्हा को देखते ही न तो उनमें कुछ सोचने-विचारने की क्षमता रहती है, न मन वश में रहता है और न ही किसी प्रकार की चतुराई बचती है। यह प्रेम की उदात्तता है।

पद्माकर

पद्माकर का जन्म 1753 ई. में तथा इनकी मृत्यु 1833 ई. में हुई। विशिष्टांग निरूपक कवियों में पद्माकर सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण तथा सर्वरस निरूपक कवि हैं। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं – 'पद्माभरण', 'जगद्विनोद', 'हिम्मतबहादुर विरुदावली' आदि। 'जगद्विनोद' में नौ रसों का विवेचन है। इनकी 'पद्माभरण' में अलंकार का निरूपण हुआ है। इस कारण इनकी गणना सर्वरस निरूपक के साथ अलंकार निरूपक आचार्य-कवि के रूप में भी किया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, ''ऐसा सर्वप्रिय कवि इस काल के भीतर बिहारी छोड़ दूसरा नहीं हुआ है।'' अपनी एक कविता में इन्होंने सामंती दरबार का बड़ा ही यथार्थपूर्ण चित्र खींचा है। रीतियुगीन सामंती दरबार यहाँ पूरी तरह सजीव हो उठा है :

गुलगुली गिल में गलीचा हैं, गुनीजन हैं
    चाँदनी है चिक हैं चिरागन की माला हैं।
कहै पद्माकर ज्यों गजक हैं, गिजा हैं
    सजी सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्यालिहिं हैं।
सिसिर के पाला को ना व्यापत कसाला तिन्हैं,
    जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला हैं, विनोद के रसाला हैं
    सुबाला हैं दुसाला हैं बिसाला चित्रसाला हैं।

इस मुक्तक में शीत ऋतु में सामंती दरबार का चित्र खींचा गया है। नर्म कालीन बिछी हुई है, उस पर दरबारी बैठे हैं। चाँदनी रात है और चिरागों की माला सजी हुई है। सेज सजी हुई है। वहाँ सुराही और प्याला में शराब है। शराब के साथ खाने-पीने की तमाम चीजे हैं। इतनी सुविधाओं के कारण शरद ऋतु के ठंढ की इन्हें कोई चिंता नहीं है। गीत-संगीत तथा मनोरंजन की तमाम चीजें मौजूद हैं।

इसमें सामंती जीवन में राजाओं और सामंतों की विलासिता का जीवंत चित्रण है। इस प्रकार के चित्रण मध्ययुगीन दौर के शासकों के जीवन को प्रमाणिक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

मतिराम

मतिराम का जन्म 1603 ई. में तथा मुत्यु 1701 ई. में हुई। यद्यपि इन्होंने रीतिकालीन आचार्यों के कर्म के तीनों प्रमुख क्षेत्रों– रस, अलंकार और छंद पर ग्रंथों की रचना की, परंतु रस में इन्होंने सर्वरस निरूपण नहीं किया। इन्होंने श्रृंगार रस को ही अपने कवि-कर्म में शामिल किया। श्रृंगार रस और नायक-नायिका भेद पर इनका 'रसराज' काफी प्रसिद्ध है। 'ललित ललाम' इनका अलंकार निरूपक ग्रंथ है। 'छंदसार' में इन्होंने छंद-निरूपण किया। रीतिकाव्य में मतिराम सहज भाव तथा आडंबरहीन भाषा के प्रमुख कवि हैं। इनके संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा है, ''भाषा के ही समान मतिराम के न तो भाव कृत्रिम हैं और न उनके व्यंजक व्यापार और चेष्टाएँ। भावों को आसमान पर चढ़ाने और दूर की कौड़ी लाने के फेर में ये नहीं पड़े हैं। नायिका के विरहताप को लेकर बिहारी के समान मजाक इन्होंने नहीं किया है।'' मतिराम की कविताओं में गृहस्थ जीवन के स्वाभाविक चित्र हैं। दाम्पत्य जीवन का चित्रण लोक-व्यवहार के अनुरूप है :

केलि कै राति अघाने नहीं दिन ही में लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी, कोउ पानी दै जाइयो, भीतर बैठि के बात सुनाई।।
जेठी पठाई गई दुल्ही, हँसि हेरि हरैं मतिराम बुलाई।
कान्ह के बोल पे कान न दीन्हीं, सुगेह की दैहरि पै धरि आई।।

अर्थात रात के मिलन से पति संतुष्ट नहीं होता, वह दिन में पत्नी को कक्ष में बुलाना चाहता है। वह पत्नी को बुलाने के लिए 'कोई पानी दे दे' की आवाज लगाता है। जेठानी दुलहिन को हँस के देखती है और उसे पानी लेकर भेजती है। पर नायिका कान्ह (पति) की बातों पर ध्यान नहीं देती और दरवाजे पर जलपात्र रखकर लौट आती है।

भूषण

भूषण का जन्म 1613 ई. में तथा मुत्यु 1715 ई. में हुई। ये वीर रस के प्रमुख रीतिकालीन कवि हैं। साथ ही, भूषण को अलंकार निरूपक कवि के रूप में भी जाना जाता है। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं– 'शिवराज भूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल-दसक'। 'ओज' इनकी कविता का सबसे प्रमुख तत्व है। शिवाजी के शौर्य और पराक्रम का इनका वर्णन प्रसिद्ध है :

इंद्र जिमि जंभ पर, बाड़व सु अंभ पर,
    रावन सदंभ पर रघुकुल राज हैं।
पौन बारिवाह पर, शुंभु रतिनाह पर,
    ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं।
दावा द्रुमदंड पर, चीता मृगझुंड पर,
    भूषण बितुंड पर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
    त्यों म्लेच्छ बंश पर सेर सिवराज हैं।।

उपर्युक्त पंक्तियों में भूषण ने शिवाजी के पराक्रम का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। कवि के अनुसार, इंद्र ने जैसे महिषासुर के पिता जंभासुर को मारा। बड़वाग्नि (समुद्र के अंदर की आग) समुद्र से विकराल होता है। राम ने घमंडी रावण को पराजित किया। जैसे हवा बादल पर, शिव कामदेव पर, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ परशुराम सहस्त्रबाहु पर भारी पड़ते हैं। जैसे जंगल की आग पेड़ों की शाखा पर भारी है, जैसे प्रकाश अंधेरा को खत्म कर देता है, जैसे कृष्ण ने कंस को मारा, वैसे ही 'म्लेच्छों' के लिए शिवाजी चुनौती बने हैं।

बोध प्रश्न 1

(क) कवि और उनके द्वारा लिखित ग्रंथ का सही युग्म बनाएँ :

	कवि		ग्रंथ
(i)	चिंतामणि	(क)	भाषा भूषण
(ii)	मतिराम	(ख)	रस विलास
(iii)	केशवदास	(ग)	काव्य निर्णय
(iv)	जसवंत सिंह	(घ)	कविप्रिया
(v)	भिखारी दास	(ड.)	ललित ललाम

....

....

....

....

....

(ख) निम्नलिखित आचार्य कवियों के बारे में पाँच-पाँच पंक्तियों में जानकारी दें।

(i) देव

....

....

....

....

....

(ii) मतिराम

....

....

....

....

....

(iii) भूषण

....

....

....

....

....

(iv) चिंतामणि

....

....

....

....

....

(ग) रीतिबद्ध कवियों के विभिन्न रूपों की चर्चा कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए।)

....

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

....

....

....

....

....

....

....

....

9.2.2 रीतिसिद्ध कवि

रीतिसिद्ध कवियों ने काव्यांग निरूपक ग्रंथ तो नहीं लिखे लेकिन कविता में रीति निरूपक आचार्यों के मानदंडों का पालन किया। रीतिसिद्ध कवियों की कविताओं में वे सभी वस्तुगत प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जो रीतिबद्ध कवियों में मौजूद थीं। रीतिसिद्ध कवियों का उद्देश्य काव्यशास्त्र की शिक्षा देना नहीं था। इनकी रुचि तद्युगीन दरबारी भावबोध के अनुरूप सरस काव्य की रचना करने में थी। बिहारी, सेनापति, बेनी, कृष्ण कवि आदि इसी कोटि के प्रमुख कवि हैं।

बिहारी

बिहारी रीतिसिद्ध काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। रीतिसिद्ध काव्य ही नहीं समस्त रीतिकाव्य में उनका प्रमुख स्थान है। बिहारी का जन्म 1595 ई. में तथा मृत्यु 1663 ई. में हुई थी। इनका एकमात्र ग्रंथ 'बिहारी सतसई' है। यद्यपि उन्होंने नीतिपरक और भक्तिपरक रचनाएँ भी की हैं परंतु मुख्य रूप से वे श्रृंगार के कवि हैं। उनकी रचनाओं में सामंती जीवन का चित्रण प्रमुखता से हुआ है। उस युग के सामंती जीवन में भोगवाद प्रमुख चीज हो गई थी। बिहारी ने उस भावबोध का वर्णन इन शब्दों में किया है :

तजि तिरथ हरि राधिका, तन दुति करि अनुरागु।
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग पग होत प्रयागु।।

उपर्युक्त पंक्तियों में बिहारी कहते हैं कि तीर्थ यात्रा छोड़कर कृष्ण और राधा के तन के सौंदर्य से अपना प्रेम बढ़ाओ। जिस ब्रज के लतामंडपों में उनकी क्रीड़ा चलती है वहाँ तो हर कदम पर प्रयाग (तीर्थराज) है।

बिहारी ने संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार – दोनों पर सिद्धहस्तता से लिखा है। उनकी संयोग विषयक रचनाओं में नायक-नायिका के अनेकानेक कार्य-व्यापार देखने को मिलती है। मनोभाव और नायक-नायिका की चेष्टाओं के वर्णन में बिहारी निपुण हैं :

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहनु हँसे, दैन कहै, नटि जाय।।

कृष्ण से बातचीत के लोभ में राधा ने कृष्ण की मुरली छुपा कर रख दी। कृष्ण के शपथ देने पर भौंह से अर्थात तनिक हँस देती है। कृष्ण के अनुरोध को राधा टाल जाती है और मुरली लौटाने का इशारा करके मुकर जाती है।

वियोग श्रृंगार में बिहारी ने अतिशयोक्ति से काम लिया है :

> आड़े दै आले बसन, जाड़े हूँ की राति।
> साहस कै-कै नेहबस, सखी सबै ढिग जाती।।

अर्थात नायिका के विरह का ताप ऐसा है कि उससे स्नेह करने वाली सखियाँ जाड़े की रात में भी गीले कपड़े का ओट लगाकर ही उसके पास जाने का साहस करती हैं।

इसी तरह की अतिशयोक्ति रूप वर्णन में भी है :

> पत्रा ही तिथि पाइयै, वा घर कैं चहुँ पास।
> नितप्रति पून्यौई रहै, आनन ओप उजास।।

अर्थात नायिका के घर के आसपास पंचांग देखकर ही तिथि का पता लगाया जा सकता है क्योंकि उसके चेहरे की आभा से वहाँ चारों ओर उजाला फैला रहता है और हर दिन पूर्णिमा की तरह ही लगता है।

बिहारी की बौद्धिकता उनकी नीतिपरक कविताओं में दिखाई देती है :

> कनक कनक तैं सौगुनी मादकता अधिकाइ।
> उहिं खाऐं बौराई, इहिं पाऐं हीं बौराइ।।

बिहारी कहते हैं सोना (धन) का नशा धतूरे के नशे से सौ गुना ज्यादा होता है। धतूरे को खाने से मनुष्य बौराता है पर सोना पाने से ही बौरा जाता है।

9.2.3 रीतिमुक्त कवि

घनानंद

घनानंद का नाम रीतिमुक्त या रीतिस्वच्छंद कवियों में सर्वोपरि है। रीति की प्रवहमान धारा के विरुद्ध खड़े रह कर एक नव्यतम काव्यधारा का प्रवर्तन करने का श्रेय घनानंद को ही जाता है। इनका जन्म सन् 1673 ई. के आसपास माना जाता है। उत्तर प्रदेश के ब्रजभाषी कस्बे में जन्मे घनानंद दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में मीरमुंशी थे। यहीं इनका अनुराग सुजान नामक वेश्या से हो गया बताया जाता है। दरबारियों के षड्यंत्र के कारण घनानंद को दरबार से निकाल दिया गया था। बादशाह के कहने पर पद न गाने और सुजान के कहने पर गा देने वाले इस प्रेमी कवि को बादशाह के क्रोध का भागी बनना पड़ा और दरबार-निकाला हासिल हुआ। ऐसे में घनानंद ने सुजान से अपने साथ चलने को कहा पर उसने इनकार कर दिया। परिणामतः उन्हें गहरा आघात लगा और वे वृंदावन आकर निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित हो गए। कृष्ण भक्ति में लीन होकर भी घनानंद सुजान के प्रति अपने अनुराग को कम न कर सके और इसीलिए वे राधा-कृष्ण में भी उसी की छाया देखते रहे। 1760 ई. में अहमदशाह अब्दाली द्वारा किए गए आक्रमण में जो कत्लेआम हुआ, उसमें ये मारे गए। लौकिक प्रेम से अलौकिकता तक पहुँचने वाले रसिक कवि घनानंद अपनी प्रेमिका सुजान को अंतिम समय तक भी भुला न पाए।

घनानंद ने संयोग तथा वियोग श्रृंगार की अत्यंत मार्मिक और प्रभावी कविता लिखी है। संयोग की अधिकांश कविता दरबारी-निर्वासन से पहले की है तथा वियोग की कविता दरबारी-निर्वासन के बाद की। संयोग की दशा में भी वियोग की अनुभूति में जीने वाला यह अद्भुत कवि विषम-प्रेम का महान कवि था।

नारी प्रेम, सौंदर्य, प्रेमानुभूति तथा व्यापक विरह-वेदना के एकनिष्ठ तथा अंतर्मुखी कवि घनानंद ने सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को भी सफलता से रूपायित किया है। इनकी कविता में सुजान की छाप भी जगह-जगह मिलती है। यों सुजान कृष्ण को भी कहा जाता है, परंतु घनानंद की कविता में यह प्रेयसी सुजान है। पर इसे प्रेम का उदात्तीकरण भी कहा जा सकता है कि उसकी प्रेयसी सुजान उसे कृष्ण-राधा की भूमि तक पहुँचा देती है। सरल, सहज तथा सीधे प्रेम मार्ग पर चलने वाला यह महाकवि सयानेपन तथा बाँकपन से कोसों दूर रहा है। एकनिष्ठता उसका आदर्श रही है। तभी तो वे कहते भी हैं :

अति सूधो सनेह कौ मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचे चलैं तजि आपनपौ, झिझकें कपटी यो निसाँक नहीं।
घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ, यहाँ एक ते दूसरी आँक नहीं।
तुम कौन-धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

इन पंक्तियों में कवि प्रेम की सहजता का वर्णन करता है। प्रेम का मार्ग अति सरल है जिसमें किसी प्रकार का सयानापन (चालाकी) नहीं है। जो सच्चे हैं वे अपने को तजकर अर्थात अपने अहंकार को छोड़कर इस मार्ग पर चलते हैं। जिनके मन में कपट है, शंकाएँ हैं वे इस मार्ग पर चलने से झिझकते हैं। घनानंद सुजान से कहते हैं यहाँ तो एक को छोड़कर कोई दूसरी बात नहीं है, यानी कि सिर्फ तुम्हीं से प्रेम है। लेकिन तुमने न जाने कैसी शिक्षा पा ली है कि मन लेकर छटाँक भी नहीं देती हो, अर्थात प्रेम-सर्वस्व लेकर प्रतिदान में जरा भी प्रेम नहीं देती।

मन भर ले लेने पर भी छटाँक भर न लौटाने वाली प्रियतमा कितनी निष्ठुर है। कपट, अविश्वास और विश्वासघात का विरोधी यह कवि सब सहता है। प्रेम मार्ग तो तलवार की धार के समान है और प्रेमी उस पर चल कर ही मंजिल पर पहुँचता है।

'सुजानहित', 'इश्कलता', 'प्रीतिपावस', 'प्रेमसरोवर', 'ब्रजविलास' आदि घनानंद रचित प्रमुख काव्य-ग्रंथ हैं। घनानंद का भावपक्ष जितना मार्मिक, उदात्त, पुष्ट और प्रभावी है, उनका कला पक्ष भी उतना ही उन्नत और समृद्ध है। काव्य गुण, छंद, अलंकार और भाषा आदि सभी दृष्टियों से उनका कला-पक्ष प्रौढ़ता के चरम रूप को प्रस्तुत करता है। भाषा के सौष्ठव को घनानंद के काव्य ने विशेष रूप से सजाया सँवारा है। तभी आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा भी है, ''अपनी भावनाओं के अनूठे रूप-रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ।'' घनानंद के काव्य बिंब योजना तथा उक्ति-वैचित्र्य की अद्भुत छवि देखते ही बनती है। हृदयगत पीड़ा और कसक को उभारने में, अलंकारों की बुनावट तथा नक्काशी में प्रभावी रंग-वैभव की छटा बिखेरने में घनानंद का कोई सानी नहीं है। उनके अभिव्यंजना शिल्प में बोलचाल की ठेठ शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों का सौंदर्य भाषिक-छटा को निखारता सँवारता है। हृदय और बुद्धि-व्यापार का ऐसा कौशल अन्यत्र दुर्लभ ही है।

आलम

आलम रीतिमुक्त धारा के दूसरे प्रमुख कवि हैं। अकबरकालीन आलम शेख नाम की एक रंगरेजिन से प्रेम करते थे और इस घटना प्रसंग से इनको प्रसिद्धि भी बहुत मिली है। कुछ विद्वान दो अलग-अलग आलम कवियों की कल्पना भी करते हैं परंतु अततः कोई प्रामाणिक तथ्य न मिलने पर यही समझा जाता है कि 'माधवानलकामकंदला' तथा 'आलमकेलि' के रचयिता आलम अकबरकालीन कवि ही हैं और ये एक ही हैं। दूसरे आलम का अस्तित्व नहीं है।

कहा जाता है कि आलम मूलतः ब्राह्मण थे किंतु रंगरेजिन शेख के अनुरागवश मुसलमान हो गए। शेख से इनके प्रेम की कथा का आधार उसकी काव्य-प्रतिभा मानी जाती है। किंवदंती है कि एक बार आलम ने शेख को अपनी पगड़ी रंगने को दी थी और उस पगड़ी में एक कागज़ का टुकड़ा बँधा था, जिस पर आलम कवि का अधूरा काव्य-छंद था :

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन,

दोहे की इस अधूरी पंक्ति को आलम ने बाद में पूरा करने की आशा से संभवतः पगड़ी में बाँधा होगा। शेख ने पगड़ी रंगते समय कागज़ देखा और दोहा पूरा कर उसी में बाँध दिया :

कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन।

आलम ने इस दोहे की पूर्ति को देखा तो सीधे शेख के घर पहुँचे और उन्हें पुरस्कृत किया। यहीं से इन दोनों का प्रेम आरंभ हुआ।

आलम के नाम से चार ग्रंथ उपलब्ध होते हैं– 'माधवानलकामकंदला', 'स्याम-सनेही', 'सुदामाचरित' तथा 'आलमकेलि'। इनमें से पहले दो ग्रंथ प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा के ग्रंथ हैं तथा 'सुदामाचरित' कृष्णभक्ति काव्य परंपरा का है। ये तीनों प्रबंधात्मक कृतियाँ हैं। 'आलमकेलि' मुक्तक काव्य रचना है। कुछ अन्य स्फुट छंद भी आलम के नाम से मिलते हैं। कवि के स्वच्छंद भाव तथा प्रेमी वृत्ति को 'आलमकेलि' में देखा जा सकता है। 'माधवानलकामकंदला' प्रेमकथा है तथा शेष दो भक्तिकाव्य हैं। आचार्य शुक्ल ने आलम कवि के संदर्भ में लिखा है, ''ये प्रेमोन्मत्त कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते थे। इसी से इनकी रचनाओं में हृदय तत्व की प्रधानता है। प्रेम की पीर या इश्क का दर्द इनके एक-एक पद में भरा पाया जाता है।''

आलम के काव्य का अभिव्यंजना-शिल्प भी मँझा हुआ है। शब्द-वैचित्र्य तथा उत्प्रेक्षा अलंकार का विशिष्ट प्रयोग इनकी खासियत है। अनुप्रास की प्रवृत्ति भी इनके काव्य में सर्वत्र देखी जा सकती है। काव्य बिंबों की सुनियोजित रेखाएँ तथा अनुभूति को प्रगाढ़ करते रंग-वैभव समृद्ध-दृश्य कवि के वैशिष्ट्य को उजागर करते हैं। इनका एक सुंदर और प्रसिद्ध छंद प्रस्तुत है :

जा थल कीन्हे बिहार अनेकन ता थल कांकरी बैठि चुन्यौ करैं।
जा रसना सौं करी बहु बात सुता रसना सौं चरित्र गुन्यौ करैं।।
आलम चैन से कुंजन में करी केलि वहाँ अब सीस धुन्यौ करैं।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं।।

प्रेम विरह में नायक कहता है जिस जगह पर तुम्हारे साथ घूमते थे आज वहाँ बैठकर कंकर चुन रहे हैं। जिस जिह्वा से तुमसे बहुत सारी बातें किया करते थे अब उससे तुम्हारे चरित्र को गुण रहे हैं। आलम कहते हैं कि जब तुम्हारा साथ था तब चैन से बागों में क्रीड़ा करते थे अब वहाँ बैठे सर धुन रहे हैं। जो सदा आँखों में बसती थी अब उसकी कहानी सुनते हैं।

ठाकुर

'ठाकुर-ठसक' और 'ठाकुर-शतक' नामक दो काव्य-संग्रह तैयार करने वाले कवि ठाकुर रीतिकालीन रीतिमुक्त श्रृंगारी काव्यधारा के भावप्रधान कवि हैं। इनका पूरा नाम ठाकुरदास था। इनका जन्म 1766 ई. में ओरछा (मध्यप्रदेश) के अंतर्गत श्रीवास्तव खरे कायस्थ परिवार में माना जाता है। ये अकबर युग में आगरे की साठ हजार सेना के अफसर रहे। बुंदेलखंड के जैतपुर नरेश केसरी सिंह, उनके पुत्र पारीछत, बिजावर नरेश केसरी सिंह तथा बाँदा नरेश

गोसाईं अनूप गिरि 'हिम्मतबहादुर' आदि राजाओं के आश्रय में इनके रहने की सूचना भी मिलती है।

ठाकुर विशुद्ध प्रेमी थे और प्रेम की एकनिष्ठता उनके जीवन का मूलाधार भी था। आचार्य शुक्ल ने इसीलिए लिखा भी है, ''ठाकुर बहुत ही सच्ची उमंग के कवि थे। उनमें कृत्रिमता का लेश नहीं। न तो कहीं व्यर्थ का शब्दाडंबर है, न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरुद्ध भावों का उत्कर्ष। भावों को यह कवि स्वाभाविक भाषा में उतार देता है। बोलचाल की चलती भाषा में भावों को ज्यों का त्यों सामने रख देना इस कवि का लक्ष्य रहा है। ब्रजभाषा की श्रृंगारी कविता प्रायः सभी पात्रों के ही मुख की वाणी होती है। अतः स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों का जो सुंदर विधान इस कवि ने किया है। उससे उक्तियों में और भी स्वाभाविकता आ गई है।''

ठाकुर की कविता अनुभूति और अभिव्यक्ति में बराबर सहज है। उनके व्यक्तिगत भाव भी सार्वजनीन बन जाते हैं। बोलचाल की स्वच्छ भाषा में प्रवाह है तथा निश्छल अनुभूति की स्वाभाविक अभिव्यक्ति उनकी परम विशेषता है। प्रेम के निर्वाह और एकनिष्ठता के प्रति वे पूर्णतः जागरूक हैं :

का करियै तुम्हरे मन कौ जिनकौ अब लौं न मिटी दगा दीबौ।
पै हम दूसरों रूप न देखिहैं आनन आन कौ नाम न लीबौ।
ठाकुर एक सौ भाव है तौ लगि जौ लगि देह धरे जग जीबौ।
प्यारे सनेह निबाहिबे को हम तौ अपनौ सौ कियो अरू कीबौ।।

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने अपने एकल समर्पण का वर्णन किया है – तुम्हारे उस मन को क्या कहें जिसका दगा देना अब तक खत्म नहीं हुआ है। लेकिन मैं न तो दूसरे की सुंदरता देखूँगा न किसी का नाम लूँगा। ठाकुर कहते हैं एक से भाव लग गया है (प्रेम हो गया है), जब तक यह देह है, जब तक जिंदा हूँ अपनी ओर से उस प्रेम को निभाया है और निभाऊँगा।

ठाकुर ने भक्ति, नीति, प्रकृति, पर्वोत्सव, होली तथा हिंडोला आदि विषयक सुंदर छंद रचे हैं। काव्यशास्त्रीय नियमों से ये पूर्णतः मुक्त रहे हैं। मांसलता से दूर नितांत रागात्मक अभिव्यक्ति में इनका मन बहुत रमा है। इनकी सौंदर्यानुभूति सहृदय की चेतना को आनंदमग्न करने वाली है। बिंब विधान में वक्र रेखाएँ तथा उनसे उभरी गंभीर अर्थ-चेतना का वैशिष्ट्य इनकी विशेषता है। भाषा, भावों के अनुरूप तथा सहज-सरल है।

बोधा

रीतिमुक्त श्रृंगारी भावधारा के प्रमुख कवियों में बोधा का नाम भी महत्वपूर्ण है। इनका पूरा नाम बुद्धिसेन था। 'विरह वारीश' तथा 'इश्कनामा' नाम से दो कृतियाँ बोधा विरचित मिलती हैं। 'विरह वारीश' तो 'माधवानलकामकंदला' की प्रसिद्ध प्रेमकथा पर आधारित प्रबंध रचना है तथा 'इश्कनामा' प्रेम संबंधी मुक्तकों का संग्रह है।

बोधा अपने आश्रयदाता पन्ना नरेश खेति सिंह की राजनर्तकी सुभान से प्रेम करते थे। 'इश्कनामा' कवि के वैयक्तिक प्रेम का विरहानुभव बनकर सामने आती है। 'विरह वारीश' में शाप, बाल, आरण्य, कामावती, उज्जैन, युद्ध, श्रृंगार, वनदेश तथा ज्ञान आदि खंडों में घटनाओं को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। बोधा के काव्य में मनोवेगों की बेबाक अभिव्यक्ति है। पन्ना दरबार की राजनर्तकी सुभान से प्रेम रखने के कारण इन्हें दरबार तथा नगर से निकाला गया था। उसी के विरह में इन्होंने 'विरह वारीश' रचना लिखी थी। पर अंततः राजा ने ही

इनके प्रेम की एकनिष्ठता देखकर सुभान के साथ रहने की अनुमति प्रदान की थी। इनके रचनाकाल की चर्चा सन् 1752 ई. से 1758 ई. तक की जाती है।

बोधा के प्रेम विषयक काव्य की अभिव्यक्ति पूरे मनोयोग से की गई प्रस्तुति बनकर सामने आती है। संगत और औचित्य का वे पूरा ध्यान रखते हैं। उनकी बिंब योजना में ग्रामीण स्वाभाविकता का पुट है। तत्सम और तद्भव शब्दावली के साथ उनकी भाषा में बुंदेली, अरबी, फारसी, पंजाबी शब्दों के समूह भी मिलते हैं। लोकोक्ति और मुहावरों का तीखा और प्रवहमान प्रयोग पाठकों को सहज ही आकृष्ट करता है। सूफी-असूफी प्रेमकाव्य की परंपराओं का अनुसरण तथा लोककथाओं का अधिग्रहण करते हुए बोधा ने दोहा, सवैया तथा कविता का सुंदर प्रयोग किया है। बोधा के काव्य एक का उदाहरण दृष्टव्य है :

> अति खीन मृनाल के तारहु तें नहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
> सुई बेह कै द्वारा सकैन तहाँ परतीति को टाँड़ों लदावनो है।।
> कवि बोधा अनी धनी नेजहु तें चढ़ि तापैं न चित्त डरावनो है।
> ये प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है।

इस मुक्तक में बोधा ने प्रेम के मार्ग की कठिनाई का वर्णन किया है। प्रेम का पथ इतना कठिन है मानो बहुत पतले तार के समान कमल के डंठल पर पैर रखकर ऊपर आना हो। सुई के छेद जैसी जगह से विश्वास का टाट लदवाना है। बोधा कहते हैं कि भाले पे चढ़ने में भी मन को डरना नहीं है। यह प्रेम का मार्ग बहुत कठिन है। यह तलवार के धार पर दौड़ लगाने के समान है।

द्विजदेव

द्विजदेव रीतिमुक्त काव्यधारा के अंतिम प्रमुख कवि हैं। श्रृंगार प्रधान स्वच्छंद वृत्ति को इन्होंने भी काव्य का प्रमुख विषय बनाया है। ये महाराजा मानसिंह द्विजदेव के नाम से जाने जाते हैं। प्रकृति वर्णन की स्वच्छंदता, संयोग-श्रृंगार में भाव प्रधान रीतिबद्धता और वियोग श्रृंगार में रीतिस्वच्छंद रागात्मकता को इनके काव्य में सहज ही देखा जा सकता है। हृदय की विभिन्न अंतर्दशाओं का अत्यंत मार्मिक वर्णन करने में ये पूर्णतः दक्ष कवि माने जाते हैं। क्षोभ, दैन्य, धृति, स्मृति तथा उद्वेग आदि भावों की सफल व्यंजना इनके काव्य में देखी जा सकती है। प्रकृति का स्वच्छंद रूप में तो सुंदर वर्णन ये करते ही हैं, आलंबन रूप में भी उसका प्रभावशाली वर्णन इन्होंने किया है। प्रकृति वर्णन का एक उदाहरण दृष्टव्य है :

> हौंरे हौंरें डोलती सुगंधसनी डारन तैं,
> औरें औरें फूलन पैं दुगुन फबी है फाब।
> चौंथत चकोरन सौं भूले गए भांरन सौं,
> चारयों ओर चंपक पै चौगुनों चढ़ौं है आब।
> द्विजदेव की सौं दुति देखन भुलानौं चित,
> दसगुनी दीपति सौं गहब गद्दे गुलाब।
> सौगुने समीर है सह न गुने तीर भए,
> लाखगुनी चाँदनी करोर गुनौं महताब।।

उपर्युक्त पंक्तियों में चाँदनी रात में खिले उपवन का सौंदर्य वर्णित किया गया है। बाग में कई तरह के फूल और पौधे लगे हुए हैं, जिससे सुगंध आ रही है। चंपा और गुलाब से यह सौंदर्य और दीप्त हो उठा है। धीमी गति से बहने वाली समीर (हवा) शरीर में चुभन पैदा कर रही

है। यह सब देखकर कोई उसी तरह खो सकता है जैसे चकोर और भौंरे प्रेम से मत्त होकर अपने को भूल जाते हैं।

कहा जाता है कि द्विजदेव राजसी परिवार से थे और अयोध्या-नरेश शाकद्वीपी ब्राह्मण महाराज दर्शनसिंह इनके पिता थे। द्विजदेव इनका उपनाम माना जाता है। इनके जन्म-काल के संदर्भ में सन् 1802 ई. तथा मृत्यु के लिए सन् 1871 ई. स्वीकृत किये जाते हैं। द्विजदेव कृत 'श्रृंगारलतिका', 'श्रृंगारबत्तीसी', 'श्रृंगारचालीसी' तथा 'रसकुसुमाकर' नामक चार कृतियों का उपलब्ध होना माना गया है।

द्विजदेव के श्रृंगारी द्वंद्वों में रूप, अनुभाव, संभोग तथा कामदशाओं आदि का भावातिरेकमय वर्णन उपलब्ध है। इसमें कहीं-कहीं रीतिबद्ध काव्य का प्रभाव भी दृष्टव्य है परंतु कवि की भावमयी प्रस्तुति का वैशिष्ट्य ही उसे रीतिमुक्त धारा से जोड़ता है। अनुभूति की गहराई तथा प्रस्तुति की मर्यादित गंभीरता को ध्यान में रखते हुए भी कहीं-कहीं घोर श्रृंगार का वर्णन किया गया है। नायिका की मनोव्यथा की प्रस्तुति तो अत्यंत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से की गई है। प्रकृति मनोहारी रूप में चित्रित की गई है। सरल और निश्छल अभिव्यक्ति, उनके नवीन उपमानों, साम्यमूलक अलंकारों तथा सूक्ष्म तरल बिंब रेखाओं में देखी जा सकती है। उनकी भाषा में रीतियुग के काव्य का सौंदर्य और ब्रजभाषा के उत्कर्ष को देखा जा सकता है। लक्षणा, मुहावरे और लोकोक्तियों ने उनकी अभिव्यंजना शक्ति को प्राणवान बनाया है। कुल मिलाकर भाषा प्रांजल बन पड़ी है।

बोध प्रश्न 2

(क) निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाएँ।

(i) बिहारी ने केवल श्रृंगारपरक रचनाएँ की हैं।

(ii) घनानंद निम्बार्क संप्रदाय से संबद्ध हो गए थे।

(iii) 'जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल कांकरी बौठि चुन्यौ करैं' – यह पंक्ति रीतिमुक्त कवि ठाकुर की है।

(iv) द्विजदेव के काव्य में प्रकृति का सुंदर चित्रण मिलता है।

(v) बोधा की भाषा में बुंदेली, अरबी, फारसी तथा पंजाबी के शब्द मिलते हैं।

(ख) निम्नलिखित काव्य-पुस्तकों के लेखकों के नाम बताइए।

(i) इश्कनामा ....

(ii) प्रेमसरोवर ....

(iii) सुदाम चरित ....

(iv) श्रृंगारलतिका ....

(ग) घनानंद की काव्यगत विशिष्टताओं का उल्लेख पाँच पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

(घ) बिहारी के काव्य की विशिष्टताओं का सोदाहरण उल्लेख कीजिए। (दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।)

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

(ङ) रीतिमुक्त काव्य की विशिष्टताओं का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

9.3 सारांश

- रीतिकाल में मुख्य रूप से तीन तरह के कवि हुए – रीतिबद्ध कवि (आचार्य), रीतिसिद्ध कवि तथा रीतिमुक्त कवि।
- रीतिबद्ध कवि - आचार्यों ने विभिन्न काव्यांगों को विश्लेषित करते हुए लक्षण ग्रंथ लिखे तथा उदाहरणस्वरूप स्वनिर्मित कविताएँ लिखीं।
- रीतिसिद्ध कवियों ने लक्षण ग्रंथ तो नहीं लिखा लेकिन इनकी कविताओं में 'रीति' की सभी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं।
- रीतिमुक्त कवियों ने स्वछंद भाव से प्रेम की कविताएँ लिखीं।

9.4 उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी साहित्य का इतिहास* – संपादक : डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- *रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन* – डॉ. रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, इलाहाबाद
- *रीतिकाव्य की भूमिका* – डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

9.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(क) (i) – ख

(ii) – ङ

(iii) – घ

(iv) – क

(v) – ग

(ख) देखिए–भाग 9.2.1

(ग) देखिए–भाग 9.2

बोध प्रश्न 2

(क) (i) – (×)

(ii) – (✓)

(iii) – (×)

(iv) – (✓)

(v) – (✓)

(ख) (i) बोधा

(ii) घनानंद

(iii) आलम

(iv) द्विजदेव

(ग) देखिए–भाग 9.2.3

(घ) देखिए–भाग 9.2.2

(ङ) देखिए–भाग 9.2.3

इकाई 10 भारतेंदु युग

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 भारतेंदु युगीन हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि

10.2.1 1857 का स्वतंत्रता संघर्ष और नवजागरण

10.2.2 राजनीतिक पृष्ठभूमि

10.2.3 सामाजिक पृष्ठभूमि

10.2.4 साहित्यिक पृष्ठभूमि

10.3 भारतेंदु युगीन हिंदी साहित्य

10.3.1 गद्य साहित्य

10.3.2 पद्य साहित्य

10.4 भारतेंदु युगीन हिंदी साहित्य की विशेषताएँ

10.4.1 विषय-वस्तु

10.4.2 भाषा-शैली

10.5 भारतेंदु युगीन साहित्य का महत्व

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 उपयोगी पुस्तकें

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- भारतेंदु युग की राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों का आकलन कर सकेंगे;
- इस बात की व्याख्या कर सकेंगे कि किस प्रकार भारतेंदु जैसे साहित्यिक व्यक्तित्व के आगमन से हिंदी साहित्य को नई दिशा मिली;
- यह बता सकेंगे कि इस युग के अन्य रचनाकारों ने भारतेंदु द्वारा आरंभ किए गए कार्य को किस प्रकार आगे बढ़ाया;
- युग के साहित्य की विषयगत और संरचनागत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे और
- भारतेंदु युग के साहित्य का महत्व स्पष्ट कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

भारत में आधुनिक युग की शुरुआत अंग्रेजों के आगमन के बाद मानी जाती है। नए युग के उदय के साथ साहित्य में भी परिवर्तन आया। रीतिकालीन काव्यधारा एक नए मोड़ में परिवर्तित हो गई। चूँकि अंग्रेजों ने भारतीय राजाओं को परास्त कर सत्ता हासिल की थी अतः उनमें विद्रोह की अग्नि सुलग रही थी। इधर शोषण के कारण जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। सन् 1857 ई. में क्रांति भड़क उठी किंतु अंग्रेजों ने उसे कठोरता से दबा दिया। राजे-रजवाड़े उजड़ गए। कई राजा जो आश्रयदाता थे स्वयं ही आश्रित हो गए। इस कारण कविता का क्षेत्र राजमहल से निकलकर जनता तक पहुँच गया। छापाखाने के प्रयोग से तथा समाचार पत्रों के प्रचार-प्रसार के कारण कवि और जनता के बीच की दूरी कम होती गई। कवियों का ध्यान जनता की समस्याओं की ओर गया, उन्होंने इन समस्याओं को केंद्र में रखकर कविता लिखनी शुरू कर दी। प्रजातांत्रिक विचारों का प्रचार होने लगा।

हिंदी भाषा और साहित्य में जो क्रांतिकारी परिवर्तन घटित हुआ उसकी शुरूआत भारतेंदु के नेतृत्व में हुई। भारतेंदु का जन्म 1850 ई. में हुआ था। 1868 ई. से इन्होंने 'कविवचन सुधा' पत्रिका का संपादन शुरू किया। 1873 ई. में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' निकाली। इनकी मृत्यु 1885 ई. में हो गई। 35 वर्ष की अल्प आयु में ही हिंदी साहित्य को उन्होंने एक नई राह पर लाकर खड़ा कर दिया। इस राह पर चलकर साहित्यकारों की मंडली ने इस भाषा और साहित्य को गौरव की स्थिति तक पहुँचाया। इस पाठ में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि के साथ हम इस बात की भी चर्चा करेंगे कि किस प्रकार उस समय के कवियों ने इस भाषा और साहित्य को आगे बढ़ाया। भाषा और साहित्य के रूप पर भी चर्चा की जाएगी और हम देखेंगे कि उस समय के साहित्य का ऐतिहासिक महत्व क्या है?

10.2 भारतेंदु युगीन हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि

अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के साथ भारत पर पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा का प्रभाव पड़ा। पूर्व से चली आ रही रूढ़ियों, संकीर्णताओं तथा जड़ता को समाप्त करने में इन प्रभावों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके साथ ही भारतीय नेताओं और समाज सुधारकों द्वारा नवजागरण के दौरान जो विभिन्न कार्यक्रम चलाए गए उसने भी इस युग के साहित्य को नया स्वरूप प्रदान किया। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल जनता की समस्याओं को साहित्य में स्थान दिया गया। भारतेंदु ने साहित्य में नई प्रवृत्तियों का समावेश किया। उस समय की परिस्थितियों का अध्ययन कर हम यह जान सकते हैं कि तत्कालीन साहित्य पर उनका क्या प्रभाव पड़ा। आइए इस युग की विभिन्न परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करें।

10.2.1 1857 का स्वतंत्रता संघर्ष और नवजागरण

1757 ई. की प्लासी की लड़ाई तथा 1764 ई. की बक्सर की लड़ाई में विजय के साथ ही भारत पर अंग्रेजों का राजनीतिक वर्चस्व मजबूत हुआ और आर्थिक शोषण की प्रक्रिया तीव्र हो गई। एक ओर अंग्रेजों ने शक्ति और कूटनीति के द्वारा विभिन्न प्रांतों को हथियाना जारी रखा, दूसरी ओर यहाँ के व्यापार और दस्तकारी को हर संभव तरीके से खत्म करना शुरु कर दिया। देशी राजाओं को उनके राज्यों से बेदखल किया गया और किसानों का शोषण तीव्र हुआ। यहाँ से प्राप्त धन को अंग्रेजों ने यहाँ की जनता से संबंधित विकास कार्य में निवेश नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि आम जनता की गरीबी और विकल्पहीनता बढ़ती गई। इस प्रकार पूरे भारतवर्ष में असंतोष की व्यापक लहर फैल गई। इस असंतोष के दो असर हुए। एक ओर अनेक राजा-रजवाड़े अपनी बेदखली और अनावश्यक हस्तक्षेप से

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

परेशान थे, वहीं आम जनता लगान के बोझ तथा जमींदार और कारिंदों के शोषण से त्रस्त थी। इनका सामूहिक प्रतिरोध 1857 ई. के विद्रोह के रूप में सामने आया। अंग्रेज शासकों ने नाना साहब की पेंशन बंद कर दी थी। उनके सहायक अजीमउल्लाह ने इसे पुनः बहाल करने के लिए इंग्लैंड की यात्रा की पर उन्हें सफलता नहीं मिली। 1856 ई. में अवध अंग्रेजों के अधीन हो गया। इस कारण यहाँ के पुराने शासकों में असंतोष था। इसी प्रकार का असंतोष देश के विभिन्न भागों – झाँसी (लक्ष्मीबाई), जगदीशपुर (कुँवर सिंह) आदि में भी था। नाना साहब ने देश के विभिन्न असंतुष्ट राजाओं से मिलकर विद्रोह की रणनीति बनाई। 31 मई, 1857 ई. विद्रोह का दिन तय हुआ, लेकिन इसी बीच 29 मार्च, 1857 ई. को बैरकपुर छावनी में मंगल पांडेय के नेतृत्व में विद्रोह भड़क उठा। मंगल पांडेय ने तीन अंग्रेज सेनाधिकारियों की हत्या कर दी। सजा के रूप में मंगल पांडेय को फाँसी दे दी गई। भारतीय सैनिकों में इसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। 10 मई, 1857 ई. को मेरठ में भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। मेरठ से ये सैनिक दिल्ली कूच कर गए। वहाँ अपदस्थ बहादुरशाह जफर को पुनः सम्राट घोषित कर दिया गया। शीघ्र ही देश भर में जगह-जगह विद्रोह फैल गया। यद्यपि अंततः इस विद्रोह को अंग्रेजों ने दबा दिया लेकिन इस विद्रोह ने राष्ट्रीयता और नवजागरण की चेतना को स्फूर्ति प्रदान की।

1857 ई. के स्वतंत्रता संघर्ष का सर्वाधिक प्रसार हिंदी भाषी क्षेत्र में था, अतः हिंदी नवजागरण को विकसित करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। बंगाल में राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, ईश्वरचंद्र विद्यासागर आदि ने समाज सुधार के जो प्रयास किए थे उसका असर हिंदी क्षेत्र पर भी था। 1857 ई. की क्रांति ने हिंदी क्षेत्र में संघर्ष की चेतना का प्रसार किया। अब इस क्षेत्र के बौद्धिक वर्ग सक्रिय हो गए। हिंदी क्षेत्र में सामाजिक सुधार के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में आर्य समाज की महत्वपूर्ण भूमिका रही। आर्य समाज की स्थापना 1875 ई. में स्वामी दयानंद सरस्वती ने की थी। आर्य समाज ने कर्मकांडों, रूढ़ियों और संकीर्णताओं पर प्रहार किया और आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार और समाज में स्त्रियों की समानता पर विषेश बल दिया। उन्होंने भारतीय समाज में मौजूद छुआछूत का भी विरोध किया। तत्कालीन समाज को सकारात्मक दिशा देने में आर्य समाज की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण थी इसका पता हजारीप्रसाद द्विवेदी के इस कथन से चलता है, ''देश भक्ति, परोपकार भावना, मातृभाषा के प्रति प्रेम, समाज-सुधार और पराधीनता के बंधन से मुक्ति उन दिनों की प्रगतिशील मनोवृत्ति के चिह्न हैं। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में वह आर्य समाज के रूप में प्रकट हो चुका था।'' हिंदी साहित्य में नवजागरण की चेतना का प्रारंभिक नेतृत्व भारतेंदु ने किया। आगे चलकर महावीरप्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में इसका प्रसार और व्यापक हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र स्वयं तथा उनके मंडल के अन्य सदस्यों ने अंग्रेजो द्वारा भारतीय धन-संपदा की लूट, शासन व्यवस्था में अनाचार, देशवासियों की दुर्दशा, अंग्रेज द्वारा विकसित जमींदार-कारिंदा-पुलिस का तंत्र, जो जनता का हर तरह से शोषण कर रहा था, आदि विषयों पर नाटक, मुकरियाँ, प्रहसन, निबंध आदि लिखे। इसके साथ ही उन्होंने आम जनता में जो जाति, मजहब आदि की संकीर्णताएँ थीं, उन्हें उससे भी बाहर आने का आह्वान किया। इस दौरान विषय और भाषा – दोनों ही स्तरों पर ऐसा साहित्य लिखा गया जो जन भावनाओं के अनुरूप था। इन रचनाओं ने जनता की आकांक्षाओं तथा स्वाधीनता प्राप्ति के जज्बों को उभारने का काम किया।

द्विवेदी युग में इन प्रयासों को और व्यवस्थित और तीव्र किया गया। स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'संपत्तिशास्त्र' (1908 ई. में प्रकाशित) पुस्तक लिखकर अंग्रेजों के शोषण से भरी अर्थनीति को उद्घाटित किया। 'सरस्वती' में विभिन्न विषयों पर स्वयं तथा अन्य लेखकों से लेख लिखवाकर संकीर्णता और रूढ़ियों की जगह वैज्ञानिक चेतना के प्रसार का प्रयास

किया। उन्होंने कविताओं के लिए विषय निर्दिष्ट किए। इस दौर की कविताओं में देश की तत्कालीन दुर्दशा के साथ अतीत के गौरव के चित्र खींचे गए और लोगों के अंदर राष्ट्रीय स्वाभिमान जगाने का प्रयास हुआ। किसान और स्त्री की वंचनाओं का पहली बार व्यापक चित्रण हुआ। इस प्रकार 1857 ई. के स्वाधीनता संघर्ष के पश्चात हिंदी नवजागरण का जो बीज पड़ा था, भारतेंदु युग और द्विवेदी युग में उसका विस्तार हुआ।

भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके मंडल तथा महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती' पत्रिका के लेखकों के प्रयासों को विभिन्न समाज सुधार आंदोलनों से भी ऊर्जा मिली। इनमें प्रमुख थे– 1828 ई. में राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित 'ब्रह्म समाज', 1867 ई. में महादेव गोविंद रानाडे के प्रभाव से स्थापित 'प्रार्थना समाज', विवेकानंद द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन, स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज आदि। ब्रह्म समाज ने कर्मकांड और अंधविश्वास पर प्रहार किया। सती प्रथा का विरोध किया। रानाडे ने अंतर्जातीय विवाह और स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। आर्य समाज ने कर्मकांड के विरोध के साथ स्वदेश प्रेम का संदेश दिया।

10.2.2 राजनीतिक पृष्ठभूमि

अंग्रेज भारत में व्यापार करने आए थे। यहाँ की राजनीतिक परिस्थिति को उन्होंने ध्यान से परखा। उन्होंने देखा कि यहाँ के छोटे-छोटे राजाओं में आपसी शत्रुता कूट-कूट कर भरी हुई है। अपनी कूटनीति के बल पर शासकों से मित्रता और शत्रुता बढ़ा कर उन्होंने राजनीतिक शक्ति प्राप्त करनी शुरू कर दी। औरंगजेब के बाद तो मुगल साम्राज्य ताश के पत्तों की तरह गिरता गया। 1757 ई. में प्लासी की लड़ाई के बाद अंग्रेजों की शक्ति में बढ़ोत्तरी हुई। दक्षिण के मराठों की शक्ति को भी अंग्रेजों ने कम करना शुरू किया। 1764 ई. में बक्सर की लड़ाई में मुगलों के अंतिम सम्राट शाह आलम को भी अंग्रेजों ने अपने अधीन कर लिया। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक में पूर्वी हिंदी प्रदेशों पर भी अंग्रेजों का प्रभुत्व कायम होने लगा। इसके पहले के पचास वर्षों में अंग्रेजों ने मराठों, जाटों और सिखों को परास्त किया। असल में 1764 ई. की बक्सर की लड़ाई में सारा हिंदी प्रदेश अंग्रेजों के अधीन हो गया। 1826 ई. में भरतपुर पर कब्जा करके अंग्रेजों ने अपनी शक्ति बढ़ाई। 1849 ई. के द्वितीय सिख युद्ध के बाद संपूर्ण भारत पर अपनी शक्ति कायम करने के लिए अंग्रेजों के सामने कोई बाधा नहीं रही। अपनी धूर्तनीति के बल पर उन्होंने 1885 ई. में अवध को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार व्यापार करने के उद्देश्य से आई हुई ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत पर पूर्ण राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो गया। यदि अंग्रेज भारतीय वस्तुओं का व्यापार करके मुनाफा ही कमाते तो भारत की आर्थिक स्थिति पर इसका अधिक प्रतिकूल असर नहीं पड़ता। किंतु इंग्लैंड में हुई औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप यह स्थिति बदल गई। इस देश से कच्चे माल का आयात किया जाता और फिर उससे तैयार माल को यहीं के बाजार में अधिक कीमत पर बेचा जाता। इस बदली हुई परिस्थिति के कारण भारत की अर्थव्यवस्था को गहरा धक्का लगा। देशी कारीगर कंगाल होने लगे। कर व्यवस्था के कारण जनता को घोर कष्ट होने लगा। भारतीय जनता में असंतोष बढ़ने लगा। उधर जिन राजाओं और सामंतों की सत्ता छिन गई थी उनमें भी बदले की भावना बढ़ रही थी। परिणामतः 1857 ई. में जन विद्रोह भड़क उठा। मुगल बादशाह बहादुरशाह को अपना नेता घोषित कर सामंतों और राजाओं ने फिर से अपने अधिकार पाने का प्रयत्न किया। उधर जनता भी इस विद्रोह में शामिल हो गई। चूँकि एक संगठित योजना के अनुरूप विद्रोह की शुरुआत नहीं हुई थी, इस कारण जगह-जगह अंग्रेजों ने इस विद्रोह को शक्ति से कुचल दिया। विद्रोह के बाद शासन की बागडोर ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से निकलकर महारानी विक्टोरिया के हाथ

में चली गई। महारानी ने घोषणा पत्र जारी किया। किंतु यह एक छलावा था। जनता की भलाई का प्रलोभन देकर शासन-तंत्र को मजबूत करने का कार्य हुआ। साहित्य की उन्नति के लिए अंग्रेजों ने कोई कार्य नहीं किया। 1835 ई. में कवि घासीराम ने बहुत दुख के साथ लिखा, ''छोड़ कै फिरंगन को राज, लै सुधर्म काज जहाँ होत पुन्य आज चलो वही देस को।'' किंतु महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र से सभी भ्रमित हुए। तत्कालीन कवियों ने रचनाओं में महारानी की प्रशंसा के गीत गाए। कुछ कार्यों से भारतीयों को लाभ भी हुआ। कॉलेजों की स्थापना से नई शिक्षा की शुरुआत हुई। यातायात के साधनों, रेल, डाक, तार की व्यवस्था से अप्रत्यक्ष रूप से भारतीयों को लाभ हुआ। प्रेस की स्थापना से साहित्यिक रचनाओं के प्रचार-प्रसार में सहायता मिली। किंतु 1885 ई. के पहले तक अंग्रेजों ने जितने भी कदम उठाए उसमें यहाँ के लोगों पर हर प्रकार के प्रतिबंध और शोषण से संबंधित कार्य शामिल थे। भारतीयों को पश्चिम में पनपी समानता की विचारधारा का पता लग गया था। तत्कालीन प्रबुद्ध नेतागण देश के सामाजिक-राजनीतिक उत्थान के कार्य में लग गए थे। किंतु देश में ऐसे आधार की तलाश जारी थी जिससे हर क्षेत्र के नेता एकजुट होकर विदेशी शासन के खिलाफ आवाज उठाते। अंततः सन् 1885 ई. में भारतीयों की अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना से वह मंच मिल गया और अब संगठित रूप से जन आंदोलन शुरू हुआ। इस प्रकार भारतेंदु के आगमन और उनके जीवन की अल्पावधि के बाद एक ऐसा आंदोलन शुरू हुआ जिसने भारतीय जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रभावित किया।

10.2.3 सामाजिक पृष्ठभूमि

नई शिक्षा पद्धति के कारण भारतीय समाज में परिवर्तन का दौर शुरु हुआ। विदेशी शासन के कारण जनता का जो शोषण हो रहा था उसके विरुद्ध समाज में क्रांति का स्वरूप उभरने लगा था। भारतेंदु और उनके सहयोगियों का ध्यान सामाजिक कुरीतियों की ओर गया। समाज की दुर्दशा देख कर तत्कालीन नेतागण जिनमें राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, रानाडे आदि थे, द्रवित हो उठे। वे सामाजिक सुधार के लिए आगे बढ़े। मादक द्रव्यों, मांस आदि पर प्रतिबंध, धर्म के प्रसार तथा ईश्वर प्रेम के प्रचार के उद्देश्य से 1873 ई. में 'तदीय समाज' की स्थापना हुई। भारतेंदु ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण अपनी रचना 'भारत दुर्दशा' में भी किया है। भारतेंदु पुरुष और स्त्री की समानता और स्त्री-शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। नवजागरण के उद्देश्य से उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन किया। समाज में घिर आई बुराइयों को दूर करने के लिए उन्होंने मंदिरों और मस्जिदों में व्याप्त भ्रष्टाचार का भंडाफोड़ किया।

तत्कालीन समाज दो वर्गों में बँट गया था। एक वर्ग प्राचीन मान्यताओं का पक्षपाती था तो दूसरा वर्ग अग्रगामी सोच वाला था। प्रगतिशील सोच वाले नेताओं ने सामाजिक संकीर्णताओं और रूढ़ियों को खत्म करने के लिए अनेक प्रयास किए। पर्दा प्रथा के कारण नारियों का उत्थान रुका हुआ था। उन्हें किसी प्रकार का सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं था। इस प्रकार समाज का आधा हिस्सा अविकसित था। स्त्रियों को भोग्य वस्तु समझा जाता और कई-कई स्त्रियाँ रखना शान-शौकत समझा जाता था। सन् 1872 ई. में केशवचंद्र सेन के प्रयत्न से सरकार ने बाल-विवाह और बहु-विवाह पर प्रतिबंध लगाया। राजा राममोहन राय के कठिन प्रयास से सन् 1829 ई. में सती प्रथा को दंडनीय घोषित किया गया। किंतु इस प्रथा के बंद होने पर एक और समस्या समाज के सामने उठ खड़ी हुई, वह थी विधवाओं की समस्या। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने इस समस्या का समाधान पेश किया। उनके प्रयास से ही सन् 1856 ई. में विधवा विवाह को वैध घोषित किया गया।

धर्म के क्षेत्र में उस समय बहुदेववाद का बोलबाला था। हिंदू धर्म के अंतर्गत ही कई संप्रदाय खड़े हो गए थे। शैव, शाक्त, वैष्णव विचारधारा वाले अपने-अपने संप्रदाय को श्रेष्ठ साबित करने में लगे हुए थे। कर्मकांड को बढ़ावा देकर पुजारी वर्ग लोगों से लाभ कमा रहा था। ये जनता को देवता के कोप का भय दिखाकर ठगते। इन सब कुरीतियों को रोकने के लिए समाज सुधारकों ने आंदोलन शुरु किया। दूसरी ओर ईसाई पादरी भी अपने मत का प्रचार करने में लगे हुए थे। हिंदू समाज के सारे रीति-रिवाजों में खामियाँ निकाल कर ईसाई धर्म का प्रचार करना ही पादरियों का मुख्य कार्य बन गया था। किंतु समाज का बुद्धिजीवी वर्ग जाग उठा था। उसमें सोचने समझने की शक्ति आ चुकी थी। अपने समाज के रीति रिवाजों को वैज्ञानिक ढंग से परखने की शक्ति ने जहाँ अच्छी बातों को बनाए रखा वहीं उन बातों को दूर करने का प्रयास किया जिससे वास्तव में हानि ही हानि हो रही थी। समाज में नई चेतना लाने के लिए पश्चिम में हुई ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के समाचार को प्रचारित किया गया। तत्कालीन साहित्यकारों ने कविताओं और विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से जन जागरण में हाथ बँटाया।

10.2.4 साहित्यिक पृष्ठभूमि

भारतेंदु युग से पहले सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में रीतिकालीन परंपरा का ही जोर था। अंग्रेजों के आगमन के बाद इस स्थिति में परिवर्तन आया। अंग्रेजों ने अपनी जरुरत के लिए फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। इससे गद्य का विकास हुआ। आधुनिक युग की बदली हुई परिस्थिति में साहित्य के विषय बदल गए। अब देश की दुर्दशा, धन के शोषण आदि विषयों पर लिखा जाने लगा। हालाँकि कविता में ब्रजभाषा तथा रीतिकालीन विषय की उपस्थिति बनी रही।

भाषा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन उपस्थित होने लगा। ब्रजभाषा और अवधी को लेकर जो मान्यता स्थापित हो गई थी उसमें परिवर्तन आ गया। अब ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली में साहित्य रचा जाने लगा। यद्यपि ब्रजभाषा में रचना एकदम समाप्त नहीं हो गई किंतु खड़ी बोली के गद्य के अनुकूल होने के कारण ब्रजभाषा की प्रमुखता कम हो गई। खुसरो और कबीर द्वारा बनाई गई भाषा का विकास होने लगा। किंतु हिंदी साहित्य में इस प्रकार का परिवर्तन क्या बिना किसी के नेतृत्व के हो गया। ऐसा नहीं था। हिंदी साहित्य के इस युगांतकारी परिवर्तन को लाने का श्रेय युगपुरुष भारतेंदु हरिश्चंद्र को है। उन्हीं के प्रयास से हिंदी गद्य की विविध विधाओं में समयोचित परिवर्तन हुआ। भारतेंदु ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी। आइए इस युग के साहित्य का परिचय प्राप्त करें।

10.3 भारतेंदु युगीन हिंदी साहित्य

भारतेंदु हरिश्चंद्र के आगमन से हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में युगांतकारी परिवर्तन आया। उन्होंने भाषा और साहित्य को एक नई राह दी। भाषा का शिष्ट और सामान्य रूप लाने का श्रेय भारतेंदु को ही है। उन्होंने हिंदी भाषा साहित्य को नवीन मार्ग पर लाया और उसे शिक्षित जनता से जोड़ा। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से लोगों में नवीन चेतना आ रही थी। देश हित और समाज हित की भावना का प्रचार हो रहा था। किंतु हिंदी साहित्य इनसे अछूता था। भक्ति-श्रृंगार आदि से संबंधित रचनाएँ ही साहित्य में हो रही थीं। यद्यपि कभी-कभी शिक्षा संबंधी छोटी मोटी पुस्तिका लिखी जा रही थी, किंतु देश के वातावरण के अनुकूल साहित्यिक रचनाएँ नहीं हो रही थीं। भारतेंदु ने देखा कि अन्य भाषाओं में विशेष कर बंगला भाषा में नए ढंग के नाटक, उपन्यास आदि रचे जा रहे हैं अतः हिंदी में भी ऐसा कार्य होना चाहिए। हिंदी साहित्य को जन-जीवन से जोड़ने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल

उन्होंने नए-नए विषयों को साहित्य में स्थान दिया। भारतेंदु के अल्पकाल के जीवन में ही लेखकों का एक दल तैयार हो गया था। इस दल ने भारतेंदु के दिखाए गए रास्ते पर चलकर गद्य और पद्य रचनाएँ कीं। इन सभी लेखकों ने आधुनिक विषय को ही अपनी रचनाओं में स्थान दिया। आइए तत्कालीन गद्यकारों और उनकी रचनाओं को जानें।

10.3.1 गद्य साहित्य

खड़ी बोली हिंदी में गद्य साहित्य का विकास भारतेंदु युग में हुआ। इस युग से पूर्व साहित्यिक रचनाएँ पद्य में की जा रही थीं। ब्रजभाषा में जो गद्य रचनाएँ पाई जाती हैं वह मुख्यतः कविवृत्त संग्रह अथवा टीकाओं के रूप में हैं। भारतेंदु युग के आगमन तक भारतीय सामंती व्यवस्था का पतन होने लगा था। साहित्यकारों का वहाँ से संरक्षण खत्म होने लगा। फलतः साहित्यकारों पर उस व्यवस्था के अनुकूल रचने का दबाव खत्म हो गया। अब साहित्य का जुड़ाव जन-जीवन और आधुनिक भावबोध से होने लगा। अब तक प्रेस का आगमन भी हो चुका था। साहित्य अब दरबारों में सुनाए जाने की चीज नहीं रही बल्कि उसे जन आकांक्षा से जोड़ा जाने लगा। इसी क्रम में विभिन्न साहित्यिक विधाओं – नाटक, निबंध, कहानी, उपन्यास आदि का विकास हुआ, जिनके लिए गद्य का संरचनात्मक ढाँचा ज्यादा अनुकूल था। इस प्रकार संवेदना के स्तर पर आधुनिक भावबोध के विकास तथा तकनीकी स्तर पर प्रेस के आगमन ने गद्य में साहित्य का रचा जाना संभव किया।

नाटक

आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का प्रवर्तन नाटकों से ही हुआ। पहले ब्रजभाषा में कुछ नाटक लिखे गए। बाद में अनुवाद द्वारा इस विधा का प्रवेश खड़ी बोली हिंदी में हुआ। स्वयं हरिश्चंद्र ने भी बंगला के 'विद्यासुंदर' नाटक का अनुवाद प्रस्तुत किया। इससे पूर्व वे 'प्रवास' नामक नाटक की रचना कर रहे थे किंतु वह पूरा नहीं हो पाया। भारतेंदु ने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'प्रेम योगिनी', 'विषस्य विषमौषधम्', 'श्री चंद्रावली नाटिका', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अंधेर नगरी' आदि मौलिक नाटक लिखे। उनके द्वारा अनुवादित नाटक हैं– 'पाखंड विडंबन', 'मुद्राराक्षस', 'सत्य हरिश्चंद्र', 'कर्पूर मंजरी', 'दुर्लभ बंधु' आदि।

भारतेंदु की प्रेरणा से ही तत्कालीन सभी लेखकों ने नाटकों की रचनाएँ की। प्रतापनारायण मिश्र ने भी 'भारत दुर्दशा' नामक नाटक की रचना की। पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'पद्मावती', 'शिशुपाल बध' और 'चंद्रसेन' नामक नाटक लिखे। चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन' ने भी भारतेंदु की प्रेरणा से ही 'भारत सौभाग्य' और 'वीरांगना रहस्य' नामक नाटकों की रचना की। लाला श्रीनिवास दास ने 'प्रह्लाद चरित्र', 'तप्ता संवरण', 'रणधीर प्रेममोहिनी' और 'संयोगिता स्वयंवर' नाटकों की रचना की। भारतेंदु के फुफेरे भाई राधाकृष्ण दास ने भी नाटकों की रचना की। उनके नाटक हैं –'दुखिनी बाला', 'महारानी पद्मावती', 'महाराणा प्रताप' तथा 'सती प्रताप'। भारतेंदु स्वयं नाटकों की रचना करने के बाद उसका मंचन किया करते थे। अभिनयशालाओं की कमी और उपन्यास की लोकप्रियता ने इस विधा की केंद्रीयता को प्रभावित किया। किंतु तत्कालीन नाटक लेखकों ने इस विधा को लोकप्रिय बनाने का भरसक प्रयत्न किया।

भारतेंदु युग में सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक और श्रृंगारपरक नाटकों की रचना की गई थी। उस समय के नाटकों की यह विशेषता भी है कि उनमें समाज के विभिन्न वर्गों को उनकी प्रधान विशेषताओं के साथ प्रस्तुत किया गया।

कहानी

भारत में कथा और आख्यान की लंबी परंपरा रही है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में मौखिक कथाओं को लिखित रूप देने की परंपरा शुरु हुई। इस क्रम में 'कहानी' नाम से लिखी गई पहली रचना इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' है। इसकी रचना 1803 ई. में हुई थी। हालाँकि इसकी शैली सूफी प्रेमाख्यानों वाली है। अंतर मात्र इतना है कि सूफी काव्य पद्य में लिखा गया है और इसकी रचना गद्य में हुई है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में फोर्ट विलियम कॉलेज के तत्वावधान में 'बैताल पचीसी', 'प्रेमसागर', 'राजनीति' और 'नसिकेतोपाख्यान' का अनुवाद किया गया। इसके अलावा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में 'माधोनल', 'माधव विलास', 'नीति कथा', 'गोरा बादल की बात', 'सुखसागर', 'उपदेश कथा' नामक कथा पुस्तकें अनुदित की गईं। 'गोरा बादल' को छोड़कर सभी पुस्तकों की रचना पाठ्य पुस्तकों के रूप में की गई थी। इस समय 'किस्सा हातिमताई', 'किस्सा चहा दरवेश', 'सूरजपुर की कहानी', 'कथा सागर', 'यात्रा स्वप्नोदय', 'गुलबकावटी' आदि रचनाएँ प्रकाशित हुईं। ये सभी रचनाएँ अनूदित हैं। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में प्राचीन और मध्यकालीन कथाओं की परंपरा चलती रही। भारतेंदु युग में पुरानी 'कथा' अथवा 'आख्यान' शैली की रचनाएँ ही की गई। जिस नई आधुनिक कथा विधा के लिए 'कहानी' शब्द का आज प्रयोग होता है ऐसी कोई रचना भारतेंदु युग में नहीं लिखी जा सकी। फिर भी पुराने ढंग की दो कथा रचना 1871 ई. में रैवरेंड जे. न्यूटन द्वारा लिखित 'जमींदार का दृष्टांत' और 1886 ई. में राजा शिवप्रसाद सिंह 'सितारे हिंद' लिखित 'राजा भोज का सपना' का जिक्र ऐसी कथा रचना के रूप में किया जाता है जिसमें आधुनिक कहानी का पूर्व रूप दृष्टिगोचर होता है। इनके अतिरिक्त हरिश्चंद्र मैगजिन के फरवरी, 1874 ई. और जनवरी, 1875 ई. के दो अंकों में एल.आर.पी. लिखित 'गणसिंधु' तथा इसी पत्रिका के अप्रैल, 1874 ई. के अंक में श्री शरण द्वारा लिखित 'धैर्य सिंधु' नामक कथा प्रकाशित हुई थी। (संदर्भ – हिंदी कहानी का इतिहास : 1900 – 1950, गोपाल राय, पृष्ठ-41) वैसे हिंदी में कहानी विधा का वास्तविक विकास द्विवेदी युग में हुआ। आचार्य शुक्ल ने जिस 'इंदुमती' का जिक्र पहली कहानी के रूप में किया है वह भी 1900 ई. में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी।

उपन्यास

उपन्यास अन्य गद्य विधाओं की तुलना में सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है। हिंदी साहित्य में इस विधा का आरंभ इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है कि इसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि हिंदी नहीं जानने वालों ने भी उपन्यास पढ़ने की ललक से हिंदी सीखी। उन दिनों दो उद्देश्य को ध्यान में रख कर उपन्यास लिखे गए। पहला उद्देश्य था – शुद्ध मनोरंजन, इस उद्देश्य से तिलिस्मी ऐयारी उपन्यास लिखे गए। ऐसे उपन्यासों में 'चंद्रकांता' तथा 'चंद्रकांता संतति' उन दिनों बहुत लोकप्रिय हुए। किशोरीलाल गोस्वामी, हरेकृष्ण जौहर तथा रामलाल वर्मा के उपन्यास भी शुद्ध मनोरंजन के लिए लिखे गए। इनके उपन्यासों के क्रमशः नाम हैं– 'तिलिस्मी शीश महल', 'कुसुमलता' तथा 'पुतली महल'। जासूसी उपन्यासकारों में गोपाल राम गहमरी विख्यात हुए। उन्होंने 'अद्भुत लाश', 'बेकसूर की फाँसी' तथा 'सरकती लाश' आदि उपन्यासों की रचना की।

संदेश प्रधान सामाजिक उपन्यासों की शुरुआत 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1870 ई.) से होती है। लाला श्रीनिवास दास ('परीक्षा गुरु') राधाकृष्ण दास ('निस्सहाय हिंदू') बालकृष्ण भट्ट ('नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान'), ठाकुर जगमोहन सिंह ('श्यामा

स्वप्न') किशोरीलाल गोस्वामी ('अधखिला फूल') तथा अयोध्या सिंह उपाध्याय ('ठेठ हिंदी का ठाठ') ने इस प्रकार के उपन्यास लिखे। इस युग के उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना की, जिनमें भारतीय इतिहास के अतीत से कथावस्तु लेकर उसे कल्पना के सहारे नया रूप दिया गया। किशोरीलाल गोस्वामी ('हृदय हारिणी', 'आदर्श रमणी', 'तारा', 'रजिया बेगम') गंगा प्रसाद गुप्त ('पृथ्वीराज चौहान') श्याम सुंदर वैध ('पंजाब पतन') के उपन्यास ऐसे ही उपन्यास हैं। भारतेंदु ने दो आख्यानपरक रचनाएँ की हैं। 'मदालसोपाख्यान' मार्कंडेय पुराण के एक प्रसंग का लेखन है। 'एक कहानी : कुछ आपबीती, कुछ जगबीती' आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई अधूरी रचना है जिसके संदर्भ में भारतेंदु समग्र के संपादक का मानना है कि 'निश्चित रूप से यह भारतेंदु की पहली औपन्यासिक कृति होती यदि यह पूरी हुई होती।' (भारतेंदु समग्र, संपादक – हेमंत शर्मा, हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, पृ. – 981)

भारतेंदु युग के उपन्यास लेखकों में भुवनेश्वर मिश्र प्रेमचंद पूर्व काल के सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी उपन्यासकार हैं। इन्होंने दो उपन्यास – 'घराऊ घटना' (प्रकाशन काल – 1893 ई.) तथा 'बलवंत भूमिहार' (रचना काल – 1896 ई., प्रकाशन काल – 1901 ई.) लिखा है। 'घराऊ घटना' में मध्यवर्ग के एक सामान्य गृहस्थ के दैनिक जीवन का, उसके सूक्ष्म ब्यौरों के साथ यथार्थ और विश्वसनीय चित्रण किया गया है। शिल्प की दृष्टि से भी 'घराऊ घटना' में नवीनता दृष्टिगोचर होती है। इसमें आत्मकथात्मक शिल्प-प्रविधि का प्रयोग किया गया है जिसमें झगड़ूलाल नामक पात्र अपने दाम्पत्य जीवन के अनुभवों का वर्णन करता है।

भुवनेश्वर मिश्र का दूसरा उपन्यास 'बलवंत भूमिहार' तत्कालीन जीवन के यथार्थ अंकन, विश्वसनीय चरित्र-चित्रण, अपेक्षाकृत जटिल वस्तु-विन्यास और यथार्थ को वहन करने वाली सक्षम भाषा के कारण प्रेमचंद से पूर्व का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास माना जा सकता है। इसमें दो जमींदार परिवारों के संघर्ष की कहानी अत्यंत विश्वसनीय और मौलिक रूप में प्रस्तुत की गई है। इस उपन्यास में कहीं भी नीति और उपदेश वचनों की झड़ी नहीं लगाई गई है, कहीं भी सामाजिक कुरीतियों पर टीका-टिप्पणी नहीं की गई है। घटना और पात्रों के चित्रण द्वारा ही यथार्थ को उद्घाटित किया गया है।

निबंध

निबंध विधा की शुरुआत भी भारतेंदु युग में ही हुई। भारतेंदु स्वयं भी अच्छे निबंधकार थे। भारतेंदु के अतिरिक्त अन्य कई महत्वपूर्ण लेखकों ने भी इस विधा में लेखन किया। भारतेंदु ने सन् 1868 ई. में 'कविवचन सुधा' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। इससे लेखन कार्य में तेजी आई। 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' तथा 'बाला बोधिनी' पत्रिका द्वारा भी गद्य विधाओं के विकास में सहायता मिली। इस युग के अन्य लेखकों ने भी पत्रिकाएँ निकालीं जिससे लेखन के कार्य में तेजी आई। भारतेंदु युग के निबंध में समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम, देशभक्ति, अतीत के प्रति गौरव भावना तथा विदेशी शासन के प्रति आक्रोश जैसे विषयों को स्थान मिला। उस युग के निबंधकारों ने मनोरंजन के लिए भी निबंध रचना की। नाक, कान, भौं, धोखा, बुढ़ापा आदि विषयों पर लिखे गए निबंध इस बात के परिचायक हैं कि उनमें जिंदादिली थी। भारतेंदु ने जहाँ समाज की उन्नति से संबंधित विषयों पर निबंध लिखे वहीं उन्होंने अतीत के गौरव और तत्कालीन शासन के प्रति असंतोष व्यक्त करने के लिए भी निबंध लिखे। 'जातीय संगीत', 'लेवी प्राण लेवी' ऐसे ही निबंध हैं।

बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु युग के प्रमुख निबंधकार हैं। उन्होंने लगभग एक हजार निबंधों की रचना की। उनके निबंध समाज, धर्म, संस्कृति, साहित्य, रीति, प्रथा आदि सभी विषयों से

संबंधित हैं। उनके विचारात्मक निबंध हैं – 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है', 'चारूचरित्र', 'चरित्रपालन', 'प्रतिभा' आदि। भावात्मक निबंधों में – 'कल्पना', 'आँसू' आदि हैं। विनोदपरक निबंधों में – 'अकिल अजीरन रोग', 'इंगलिश पढ़े सो बाबू होय' आदि मुख्य हैं।

प्रतापनारायण मिश्र इस युग के अन्य महत्वपूर्ण निबंधकार हैं, इन्होंने व्यंग्य से पूर्ण निबंधों की रचना की है। 'भौं', 'होली', 'धोखा', 'बुढ़ापा' ऐसे ही निबंध हैं। 'शैवमूर्ती', 'विश्वास' आदि इनके विवेचनापरक निबंध हैं।

बाल मुकुन्द गुप्त भारतेंदु युग में इस विधा में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले निबंधकारों में हैं। ये द्विवेदी युग में भी लिखते रहे। 'गुप्त निबंधावली' के नाम से इनके निबंधों का संग्रह प्रकाशित है।

समालोचना

समालोचना विधा के अंतर्गत किसी रचनाकार की रचना का गुण दोष विवेचन होता है। भारतेंदु युग में ही इस विधा की शुरुआत हो गई थी। उपाध्याय पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'आनंद कादंबिनी' नामक पत्रिका निकाली थी। इस पत्रिका में लाला श्रीनिवास दास रचित नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' की विशद और कड़ी आलोचना छपी थी। इसमें गुण-दोष के आधार पर बड़ी बारीकी से जाँच पड़ताल की गई थी। इस प्रकार इस युग में पुस्तक समीक्षा की शुरूआत हुई जिसकी मुख्य प्रवृत्ति गुण-दोष का निरूपण करना था। 1886 ई. में पं. बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी प्रदीप में संयोगिता स्वयंवर की 'सच्ची समालोचना' की। पुस्तक समीक्षा से इतर 1883 ई. में भारतेंदु ने 'नाटक' शीर्षक से इस विधा पर सैद्धांतिक लेख लिखा। 1897 ई. में गंगा प्रसाद अग्निहोत्री के लेख 'समालोचना' का प्रकाशन हुआ। भारतेंदु युग के दौरान ही शिवसिंह सेंगर के साहित्येतिहास ग्रंथ 'शिवसिंह सरोज' (1883 ई.) तथा जार्ज ग्रियर्सन के 'द मॉडर्न वर्नेक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' (1888 ई.) का प्रकाशन हुआ। इन सबके बावजूद भारतेंदु युग में हिंदी समालोचना का पूरी तरह विकास नहीं हो पाया। इस विधा का विकास द्विवेदी युग में ही हुआ।

10.3.2 पद्य साहित्य

भारतेंदु युग एक नए युग की शुरुआत का युग था। इस युग में एक ओर पुरानी परंपरा का अनुसरण गुण-दोष के आधार पर किया गया, वहीं नए विचारों का समावेश करके समाज में चेतना फैलाने का प्रयास भी किया गया। सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए युग पुरुषों ने समाज सुधार आंदोलन शुरू किए वहीं साहित्य के क्षेत्र में भी नवीनता का समावेश करके युगानुरूप काव्य की रचना की गई। रीतिकालीन परंपरा के घेरे से निकल कर काव्य जनसामान्य के निकट पहुँचा। काव्य को एक सीमा रेखा से पार निकालने की शुरुआत भारतेंदु जैसे युग निर्माता ने ही किया। उन्होंने कविता के विषय-वस्तु में देश-प्रेम, अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे शोषण तथा आम जनता की दीन-हीन दशा का समावेश किया। हालाँकि यथासमय उन्होंने अंग्रेजों की भी सराहना की है। उन्होंने ड्यूक ऑफ एडिनबरा के 1869 ई. में भारत आगमन के मौके पर 'श्री राजकुमार-सुस्वागत पत्र', 1871 ई. में प्रिंस ऑफ वेल्स के अस्वस्थ होने पर भी कविता लिखी। इस प्रकार राजभक्ति और देशभक्ति का द्वंद्व इस युग में मौजूद था। भाषा के स्तर पर भारतेंदु ब्रजभाषा को कविता के अनुकूल मानते थे। भारतेंदु तथा उस युग के अन्य कवियों ने ब्रजभाषा में भी काव्य रचनाएँ की है। भाषा के स्तर पर यह संक्रमण का युग था। ब्रजभाषा का प्रभाव अभी शेष था, पर खड़ी बोली प्रमुखता से अपना स्थान बना रही थी। तत्कालीन पद्य साहित्य को हम रचनाकारों के माध्यम से अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। आगे भारतेंदु युग के प्रमुख कवियों के बारे में जानकारी दी जा रही है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म 3 सितंबर सन् 1850 ई. में हुआ था। इनमें कविता करने की जन्मजात प्रतिभा थी। परिस्थितियों के कारण स्कूल और कॉलेज की शिक्षा से वंचित रहना पड़ा। स्वाध्याय से इन्होंने संस्कृत, उर्दू, हिंदी, बंगला और गुजराती भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। यात्राओं से इन्हें देश की दशा का ज्ञान हुआ। बंगाल आदि जगहों पर लिखे जा रहे साहित्य की जानकारी मिली। इससे इनमें देशभक्ति की भावना विकसित हुई। पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करके इन्होंने हिंदी गद्य विधाओं को आगे बढ़ाया। हिंदी भाषा साहित्य के भंडार को इन्होंने 238 ग्रंथों की रचना करके समृद्ध किया। काव्य ग्रंथों में 48 प्रबंध काव्य, 21 अन्य प्रकार के काव्य ग्रंथ तथा सैकड़ों मुक्तक काव्य की रचनाएँ कीं। भारतेंदु की गज़लें 'रसा' नाम से मिलती हैं। नीचे इनकी कुछ रचनाओं का नाम दिया जा रहा है :

(1) भक्त सर्वस्व, (2) प्रेममालिका, (3) फूलों का गुच्छा, (4) जैन कुतूहल, (5) प्रेम सरोवर, (6) प्रेमाश्रु वर्णन, (7) प्रेम फुलवारी, (8) प्रेत तरंग, (9) भक्तमाल उत्तरार्द्ध, (10) बैसाख महात्मय, (11) प्रेम प्रलाप, (12) गीत गोविंद, (13) सतसई सिंगार, (14) होली, (15) मधु मुकुल, (16) वर्षा विनोद, (17) प्रेम माधुरी, (18) विनय प्रेम पचासा, (19) कृष्ण चरित, (20) कार्तिक स्नान तथा (21) राग संग्रह।

प्रबंध काव्यों में राजभक्ति संबंधी रचनाएँ हैं– श्री राजकुमार शुभागमन, भारत भिक्षा, भारत वीरत्व, विजय वल्लरी, विजयिनी विजय पताका, जातीय संगीत और रिपुनाष्टक। भक्तिकाव्य संबंधी प्रबंध रचनाएँ हैं– कृष्ण काव्य प्रबोधिनी। विविध विषयों से संबंधित रचनाएँ हैं– चतुरंग वसंत, होली, उर्दू का स्यापा, बकरी विलाप, बंदर सभा, नए जमाने की मुकरी। भारतेंदु ने जहाँ परंपरा से प्राप्त भक्तिपूर्ण रचनाएँ की वहीं नवीन प्रवृत्तियों से युक्त रचनाएँ भी कीं।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का जन्म 1855 ई. में जिला गोंडा के दतापुर ग्राम में हुआ था। ये भारतेंदु युग के महत्वपूर्ण कवि हुए। इन्होंने भारतेंदु द्वारा किए गए कार्य को आगे बढ़ाया। इन्हें प्रकृति से बहुत प्रेम था। विशेष रूप से बादलों के भिन्न-भिन्न रूपों को देखकर ये मुग्ध हो जाते थे। यही कारण है कि इन्होंने अपना उपनाम 'प्रेमघन' रखा। जिस प्रकार भारतेंदु ने 'तदीय समाज' की स्थापना द्वारा समाज सुधार का कार्य किया, उसी प्रकार इन्होंने भी 'संदर्भ सभा' तथा 'रसिक समाज' की स्थापना करके समाज सुधार का कार्य किया। 'आनंद कादंबिनी' तथा 'नागरी नीरद' पत्रिकाओं का प्रकाशन करके हिंदी साहित्य को आगे बढ़ाने का कार्य किया। वे परंपरागत विषय से आरंभ कर नवीनता की ओर बढ़ते गए। राजभक्ति, देशभक्ति तथा हिंदी के प्रति अनन्य प्रेम और हास्य से संबंधित कविताएँ कीं। इनकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार है :

राजभक्ति से संबंधित रचनाएँ – हार्दिक हर्षादर्श, भारत बधाई, आर्याभिनंदन आदि।

देशभक्तिपूर्ण रचनाएँ हैं – पितर प्रलाप, कलिकाल, तर्पण, स्वागत पत्र, आनंद बधाई, कजली, होली आदि।

हास्यपूर्ण रचनाएँ हैं – हास्यबिंदु तथा होली की नकल।

प्रतापनारायण मिश्र

प्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु युग के महत्वपूर्ण कवि हैं। 24 सितंबर सन् 1856 ई. को कानपुर

में इनका जन्म हुआ था। इन्हें स्कूली शिक्षा नहीं मिल पाई। स्वाध्याय से ही हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी और बंगला भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। भारतेंदु द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'कवि वचन सुधा' से प्रेरणा पाकर ये साहित्य सेवा की ओर मुड़े। प्रथम रचना 'प्रेम पुष्पावली' की प्रशंसा भारतेंदु ने की जिससे इन्हें बहुत बल मिला और वे अधिक उत्साह से हिंदी साहित्य की सेवा में लग गए। भारतेंदु, 'प्रेमघन' आदि की तरह इन्होंने भी 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकाला। मिश्र जी की काव्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :

(1) प्रेम पुष्पावली, (2) मन की लहर, (3) शृंगार विलास, (4) दंगल खंड (आल्हा), (5) ब्रेंडला स्वागत तथा (6) लोकोक्ति शतक।

इनकी रचनाओं में तत्कालीन जरूरतों के अनुसार विषय रखे गए हैं। समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए इन्होंने रचनाएँ कीं। अंग्रेजी शासन की शोषण नीति के खिलाफ इन्होंने आवाज उठाई। प्राचीन गौरव का वर्णन कर लोगों में जोश पैदा किया। देशभक्ति पूर्ण रचनाओं में वे भाव विह्वल हो जाते हैं। अन्य कवियों के समान इन्होंने उन सभी विषयों को अपनी रचनाओं में शामिल किया जिनसे समाज में चेतना फैले।

राधाचरण गोस्वामी

भारतेंदु की प्रेरणा से तत्कालीन कवियों की एक मंडली तैयार हो गई। इस मंडली के सभी कवियों ने एक साथ भारतेंदु द्वारा प्रारंभ किए गए कार्य में हाथ बँटाया। पं. राधाचरण गोस्वामी इन्हीं में से एक थे। इनका जन्म 25 फरवरी सन् 1859 ई. को वृंदावन में हुआ था। इनके पिता कवि थे। जिस प्रकार प्रतापनारायण मिश्र को भारतेंदु द्वारा प्रकाशित पत्रिका से हिंदी सेवा की प्रेरणा मिली थी, उसी प्रकार राधाचरण गोस्वामी भी भारतेंदु की पत्रिका से प्रेरित होकर हिंदी साहित्य की सेवा में लग गए। इन्होंने अपने प्रेरणा पुरुष भारतेंदु के नाम पर ही 'भारतेंदु' नामक पत्र निकाल कर हिंदी साहित्य के संवर्द्धन में हाथ बँटाया। इन्होंने राजभक्ति से संबंधित काव्य रचनाएँ भी कीं। किंतु जैसा कि तत्कालीन सभी कवियों ने शासक वर्ग की नीति से क्षुब्ध होकर उनके विरोध में रचनाएँ कीं उसी प्रकार राधाचरण जी ने भी शासन की खुलकर आलोचना की। नवचेतना फैलाने के लिए उन्होंने भी अतीत के गौरव का चित्रण किया है। राधाचरण जी की काव्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :

(1) नव भक्तमाल, (2) दामिनी दूतिका, (3) शिशिर सुषमा, (4) इश्क चमन, (5) भ्रमरगीत (6) निपट नादान वारहमासी, (7) प्रेम बीगीची, (8) भारत संगीत, (9) विधवा-विलाप, (10) भू-भार हरणार्थ-प्रार्थना, (11) पतित स्रोत, रेलवे स्रोत, यमलोक की यात्रा (व्यंग्यपूर्ण रचनाएँ)।

राधाकृष्ण दास

भारतेंदु की प्रेरणा से बाहर के ही नहीं उनके घर के लोग भी समान रूप से प्रभावित हुए थे। भारतेंदु के फुफेरे भाई राधाकृष्ण दास ने भी भारतेंदु के कार्य को आगे बढ़ाया। इन्होंने तत्कालीन अंग्रेजी सरकार की हिंदी विरोधी नीति को अच्छी तरह परखा था। अदालतों में हिंदी के प्रवेश के लिए उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। इनकी काव्य रचनाओं में भी उन्हीं विषयों को स्थान मिला जिनका भारतेंदु ने प्रणयन किया। राधाकृष्ण दास ग्रंथावली के अनुसार इनकी समस्त काव्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :

(1) मेकडानेल पुष्पांजलि, (2) विजयिनी विलाप, (3) पृथ्वीराज प्रयाण, (4) भारत बारहमासा, (5) जुबिलि, (6) देश दशा, (7) छप्पन की विदाई, नए वर्ष की बधाई, (8) राम जानकी, (9) प्रताप विसर्जन, (10) रहिमन विलास, (11) विनय तथा (12) फुटकर कविता।

इस प्रकार तत्कालीन सभी कवियों ने जनजागरण के लिए काव्य रचनाएँ की। चाहे समाज सुधार से संबंधित रचनाएँ हों या देशभक्ति पूर्ण रचना, कवियों का मुख्य उद्देश्य था उस समय के भारतीय समाज को एक नई दिशा देना। परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़कर एक नए भारत के निर्माण के लिए उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से आह्वान किया। उस युग के कवियों के नेता भारतेंदु थे। उनकी राह पर चलकर अन्य सहयोगियों ने इस महान कार्य को आगे बढ़ाया। सर्वगुण संपन्न व्यक्तित्व के कारण वे युगपुरुष बने और उनके कार्यों के कारण इस युग का नाम ही भारतेंदु युग पड़ गया।

बोध प्रश्न-1

(क) नीचे दिए नाटक और नाटककारों का सही युग्म बनाएँ।

	नाटक		नाटककार
(i)	रणधीर प्रेममोहिनी	–	(क) पं. बालकृष्ण भट्ट
(ii)	विषस्य विषमौषधम्	–	(ख) चौधरी बदरी नारायण 'प्रेमघन'
(iii)	शिशुपाल वध	–	(ग) लाला श्रीनिवास दास
(iv)	भारत सौभाग्य	–	(घ) राधाकृष्ण दास
(v)	दुखिनी बाला	–	(ङ) भारतेंदु

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-एक पंक्ति में दीजिए।

(i) भारतेंदु हरिश्चंद्र ने बंगला से किस नाटक का अनुवाद किया था?

....

(ii) 'जमींदार का दृष्टांत' शीर्षक कहानी के लेखक कौन हैं?

....

(iii) 'देवरानी जेठानी की कहानी' नामक उपन्यास की रचना किस वर्ष हुई थी?

....

(iv) 'बलवंत भूमिहार' के लेखक कौन हैं?

....

(v) 'अकिल अजीरन रोग' शीर्षक निबंध के लेखक कौन हैं?

....

(ग) भारतेंदु युग में नाटक विधा के विकास के बारे में पाँच पंक्तियों में जानकारी दीजिए।

....

....

....

....

....

(घ) भारतेंदु युग के प्रमुख निबंधकारों का उल्लेख पाँच पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

(ङ) नीचे दिए गए वाक्यों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाएँ।

(i) 'विजयिनी विजय पताका' भारतेंदु की राजभक्ति संबंधी काव्य रचना है।

(ii) 'आनंद कादंबिनी' पत्रिका का प्रकाशन राधाचरण गोस्वामी ने किया था।

(iii) 'पृथ्वीराज प्रयाण' के लेखक राधाकृष्ण दास हैं।

(iv) 'ब्रेंडला स्वागत' प्रतापनारायण मिश्र की रचना है।

(च) भारतेंदु युगीन प्रमुख कवियों तथा उनकी रचनाओं का परिचय दस पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

10.4 भारतेंदु युगीन हिंदी साहित्य की विशेषताएँ

भारतेंदु युग हिंदी साहित्य में नवीनता के प्रवेश का युग था। साहित्य को नई राह पर लाने के लिए भारतेंदु द्वारा प्रारंभ किया गया कार्य अति महत्वपूर्ण है। उस युग के सभी कवियों ने इसी कार्य को आगे बढ़ाया। साहित्य में जहाँ नए-नए गद्य दिशाओं का प्रवर्तन हुआ वहीं काव्य के विषय-वस्तु, भाषा शैली और छंद विधानों में भी परिवर्तन आया। भारतेंदु युग की परिस्थितियों की चर्चा करते हुए हमने देखा कि किस प्रकार अंग्रेजों ने धीरे-धीरे भारत पर राजनीतिक अधिकार प्राप्त कर लिया था। शासन स्थापित होने के बाद उन्होंने यहाँ अत्याचार करना शुरू किया। देश का धन ढोकर विदेश ले गए, यहाँ के उद्योग धंधे नष्ट कर

दिए गए। लोगों को आपस में लड़वाया, सांप्रदायिकता फैलाकर अपने राज को मजबूत बनाया, इन्हीं सब कारणों से लोगों में राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना, राष्ट्रीय चेतना, देश-प्रेम, मातृभूमि के प्रति भक्ति की भावना बढ़ी। साहित्यकार इस दौर में पीछे नहीं रहे। उन्होंने इस कार्य के लिए साहित्यिक रचनाएँ कीं। यही कारण है कि परंपरा से चली आ रही साहित्यिक प्रवृत्तियों में परिवर्तन आया।

10.4.1 विषय-वस्तु

तत्कालीन लेखक चाहे गद्य लिख रहे हों या पद्य रचना कर रहे हों सभी में विषय-वस्तु की दृष्टि से बदलाव आया। यद्यपि काव्य रचना में परंपरा को भी स्थान दिया गया, लेकिन धीरे-धीरे परंपरा का स्थान नवीनता ने ले लिया। स्वयं भारतेंदु ने प्राचीन परिपाटी के अनुसार रचनाएँ कीं। वे भक्त कवि थे। वल्लभ संप्रदाय से संबंधित होने के कारण उन्होंने राधा-मोहन से संबंधित पद रचनाएँ कीं। एक उदाहरण दृष्टव्य है :

जय जय हरि राधा रस केलि।
तरनि तनूजा-तट इकन्त मैं बाहु बाहु पर मेलि

(ब्रजरत्न दास, भारतेंदु ग्रंथावली, द्वितीय खंड, पृ. – 55)

उस युग के एक और महत्वपूर्ण कवि 'प्रेमघन' की यह रचना देखिए जिसमें उन्होंने राधा-कृष्ण की स्तुति की है :

छहरे मुख पै घनश्याम से केश, इतै सिरमौर परवा फहरे
उत गोल कपोलन पै अति लोल अमोल लली मुक्ता भहेरे।।
इति भांति सा वद्रीनाराणजू दोऊ देखि रहे जमुना लहैरे
नित ऐसे सनेह सो राधिका श्याम हमारे हिय में सदा बिहैरे।।

उस समय के अन्य कवियों ने भी भक्तिपूर्ण रचनाएँ की किंतु जैसा कि बताया गया है कवियों में प्राचीनता से नीवनता की ओर झुकाव होता गया। तत्कालीन परिस्थितियों ने उन्हें काव्य विषय में परिवर्तन लाने को बाध्य किया। भारतेंदु देश-दशा पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखते हैं :

रोवहु सब मिलकै आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।

देश का धन विदेश चला जा रहा था उसकी चिंता व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा :

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।

तत्कालीन सभी कवियों ने एक ओर देश विरोधी शासन के प्रति आक्रोश व्यक्त किया, वहीं समाज में जागृति लाकर इस शासन के खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरणा भी दी।

भारतेंदु ने सन् 1884 ई. में बलिया के ददरी मेले में 'भारत की उन्नति कैसे हो सकती है?' विषय पर भाषण दिया। यह भाषण नवोदित 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में छपा। इस भाषण में भारतेंदु ने देशवासियों से आह्वान किया कि वे आपस में मिलकर देश की उन्नति के लिए कार्य करें। अपने लेखों और कविताओं के माध्यम से उन्होंने जनजागरण का कार्य किया।

भारतेंदु ने अपने नाटकों में जीवन के बीच से ली गई सामग्री का उपयोग किया। 'चंद्रावली'

नाटक में प्रेम का आदर्श सामने रखा है तो 'नील देवी' में पंजाब के एक राजा पर बाहरी राजा के आक्रमण का ऐतिहासिक वृतांत लिखा है। देश की दशा का मार्मिक चित्रण उनके 'भारत दुर्दशा' नाटक में मिलता है। नाटकों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक पाखंड को उजागर किया है।

देशभक्ति पूर्ण रचना कर 'प्रेमघन' ने जनता को जागृत किया। भारत की दुर्दशा पर दुःखी होकर उन्होंने लिखा :

मची है भारत में कैसी होली, सब अनीति गतिहोली।
बद्री प्रसाद मदिरा अधिकारी लाज सरम सब धो ली।

प्रबुद्ध नेताओं द्वारा एक ऐसे राह की तलाश की जा रही थी जिससे सभी मिल कर अंग्रेजी सरकार का सामना करें। 1885 ई. में वह समय भी आ गया। 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' के जन्म से जनता को एक ऐसा मंच मिला, जिसके द्वारा वे संगठित रूप से संघर्ष कर सकते थे। प्रतापनारायण मिश्र पार्टी की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं :

जय जयति भगवति कांगरेस असेश मंगल कारिनी।

अपनी मातृभाषा के द्वारा सब उन्नति का मूल मंत्र तो भारतेंदु ने ही दिया था। बाकी कवियों ने भी मातृभाषा की आवश्यकता पर जोर दिया। प्रतापनारायण मिश्र ने देवनागरी के पक्ष में लिखा :

देवनागरिही गरे लगाओं यहाँ मोद महान्
रहो निशंक मदमाते श्री परताप समान्

तत्कालीन सरकार द्वारा टैक्स लगा कर जनता का शोषण हो रहा था। कवियों ने इसका विरोध किया। भारतेंदु ने लिखा :

चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।।

'प्रेमघन' भी इस टैक्स के विरोध में आबाज बुलंद करते हैं :

रोओं सब मुँह बाय बाय
हाय टिकस हाय हाय

शिक्षाप्रद उपन्यास लिखकर पं गौरीदत्त तथा लाला श्रीनिवास दास ने इस विधा में नवीनता का समावेश किया। 'देवरानी जेठानी की कहानी' तथा 'परीक्षा गुरु' इस प्रकार के प्रारंभिक उपन्यास हैं। यहाँ 'परीक्षा गुरु' का कुछ अंश प्रस्तुत है :

'मुझे आपकी यह बात बिलकुल अनोखी मालूम होती है', भला परोपकारादि शुभ कामों का परिणाम कैसे बुरा हो सकता है? पंडित, पुरुषोत्तम दास ने कहा 'जैसे अन्न प्राणाधार हैं परंतु अतिभोजन से रोग उत्पन्न होता है।' लाला ब्रजकिशोर कहने लगे, 'देखिए परोपकार की इच्छा अत्यंत उपकारी है परंतु हद से आगे बढ़ने पर वह भी फिजूलखर्ची समझी जायेगी और अपने कुटुंब परिवारादि का सुख नष्ट हो जायेगा। जो आलसी अथवा अधर्मियों की सहायता की तो उससे संसार में आलस्य और पाप की वृद्धि होगी।

'परीक्षा गुरु'

भारतेंदु युग के निबंधकारों ने समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम, देशभक्ति, अतीत के प्रति गौरव भावना, विदेशी शासन के प्रति आक्रोश आदि विषयों पर निबंध लिखे। बालकृष्ण भट्ट रचित 'आत्म निर्भरता' निबंध का यह अंश देखिए :

> *इस पचास साठ वर्षों से अँगरेजी राज्य के अमन-चैन का फायदा पाय हमारे देशवाले किसी की भलाई की ओर न झुके वरन् इस वर्ष की गुड़ियों का ब्याह कर पहले से ड्योढ़ी-दूनी सृष्टि अलबत्ता बढ़ाने लगे। हमारे देश की जनसंख्या अवश्य घटनी चाहिए। आत्मनिर्भरता में दृढ़, अपने कूबते बाजू पर भरोसा रखने वाला, पुष्टवीर्य, पुष्टबल, भाग्यवान, एक संतान अच्छा। 'कूकर सूकर से' निकम्मे, रग रग में दास भाव से पूर्ण, परभाग्योपजीवी दस किस काम के?*

इस प्रकार भारतेंदु युगीन साहित्य में विषय-वस्तु की दृष्टि से महत्वपूर्ण बदलाव आया। अब साहित्य भक्ति, नीति तथा श्रृंगार तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि उसका जुड़ाव जनता के सरोकारों के साथ हो गया। भारतेंदु तथा उस युग के अन्य लेखकों ने साहित्य के माध्यम से जन-जागरण का कार्य किया। उन्होंने एक ओर अंग्रेजों की अनीति और शोषण को उजागर किया तो आम जन में आधुनिकता की चेतना का प्रसार किया।

10.4.2 भाषा-शैली

भारतेंदु पूर्व हिंदी साहित्य की भाषा में परंपरागत शैली अपनाई जाती थी। भारतेंदु युग में काव्य की भाषा तो ब्रजभाषा ही थी, किंतु खड़ी बोली में भी रचनाएँ होने लगीं। गद्य के लिए खड़ी बोली को संघर्ष करना पड़ा। तत्कालीन सरकार की हिंदी विरोधी नीति के कारण खड़ी बोली के विकास में बाधा आ रही थी। यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप से सरकार की कई नीतियों के कारण इस भाषा के विकास तथा विस्तार में मदद ही मिली, किंतु प्रत्यक्ष रूप से इसका विरोध होता रहा। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' तथा राजा लक्ष्मण सिंह ने इस भाषा के विकास के लिए कार्य किया था। किंतु भारतेंदु ने ही सही समय में इस भाषा के लिए सरल सुलभ राह निकाली। गद्य रचनाओं में बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर उन्होंने इसे जनता के निकट ला दिया। तत्कालीन सभी लेखकों ने भारतेंदु द्वारा अपनाई गई नीति का ही पालन किया। भारतेंदु ने दो प्रकार की शैली का प्रयोग किया। भावावेश के समय उनकी भाषा में छोटे वाक्यों का प्रयोग हुआ है, पदावली सरल बोलचाल की हो जाती है। एक उदाहरण देखिए :

> *भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया? किसने इस उपद्रव और जाल करने को कहा था? कुछ न होता, तुम्हीं तुम रहते, बस चैन था केवल आनंद था। फिर क्यों यह विषमय संसार किया? बखेड़िए।*
>
> — 'चंद्रावली नाटिका'

तथ्यनिरूपण के लिए उन्होंने संस्कृत पदावली के समान लंबे वाक्यों का प्रयोग किया। 'नीलदेवी' से एक गद्यांश यहाँ उद्धृत है :

> *मैं कोई सिद्ध नहीं कि रागद्वेश से विहीन हूँ। जब मुझे अंगरेजी रमणी लोग मेंदसिंचित केश राशि, कृत्रिम कुन्तलजूट, मिथ्या रत्नाभरण, विविध वर्ण वसन से भूषित, क्षीण कटिदेश कसे, निज निज पतिगण के साथ प्रसन्नवदन इधर से उधर फर-फर कल की पुतली की भाँति फिरती हुई, दिखाई पड़ती है तब इस देश की सीधी-सीधी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती हैं और यही बात मेरे दुःख का कारण होती है।*
>
> — (रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 316)

भारतेंदु युग के लेखकों ने विषयानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। प्रतापनारायण मिश्र जब हास्य विनोद से पूर्ण रचना करते हैं तो उनकी भाषा चुटीली हो जाती है। शब्दों के प्रयोग द्वारा वे व्यंग्य उत्पन्न करते हैं। 'समझदार की मौत' निबंध की भाषा देखिए :

सच है 'सब तें भले हैं मूढ़ जिन्हें न व्यापै जगतगति'। मजे से पराई जमा गपक बैठना, खुशामदियों से गप मारा करना, जो कोई तिथि-त्योहार आ पड़ा तो गंगा में बदन धो आना, गंगापुत्र को चार पैसे देकर संतमेत में धरममूरत, धरमऔतार का खिताब पाना, संसार परमार्थ दोनों तो बन गए, अब काहे की है-है और काहे की खै-खै?

भारतेंदु युग में काव्य की भाषा को सरल सुबोध बनाने का प्रयास किया गया। जनसाधारण में प्रचलित शब्दों का प्रयोग कर काव्य को जनसामान्य के निकट लाया गया। उर्दू के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी किया गया। इस युग के कवियों ने हास्य व्यंग्य के लिए अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया। भारतेंदु की रचना 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' से यह उदाहरण दृष्टव्य है :

विष्णु वारूनी, पोर्ट पुरूषोत्तम, मद्य मुरारि।
शैंपन शिव, गौरी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म विचारि।।

लोकोक्ति और मुहावरे का प्रयोग कर भाषा को सजीव और बोधगम्य बनाया गया। दोहा, पद, कवित्त आदि परंपरागत छंदों के साथ लोकगीत के छंदों का प्रयोग कर कविता को जन जीवन के निकट लाया गया। लावनी, कजली, होली आदि छंदों के प्रयोग से काव्य की भाषा जनसामान्य तक पहुँच गई। भारतेंदु द्वारा रचित 'वर्षा विनोद' से कजली का यह उदाहरण प्रस्तुत है :

प्यारी झूलन पधारो झुकि आए बदरा।
ओढ़ौ सुरुख चुनरि तापै श्याम चदरा।।
देखो बिजुरी चमक्के बरसै अदरा।
'हरिचंद' तुम बिन पिय अति कदरा।।

इस प्रकार भारतेंदु युगीन हिंदी साहित्य में जहाँ साहित्य में नवीन विधाओं का समावेश हुआ वहीं नए-नए विषयों को लेकर रचनाएँ हुईं। विशेष रूप से तत्कालीन समस्याओं को लेकर साहित्य रचना हुई। काव्य में जहाँ परंपरागत विषयों को बनाए रखा गया, वहीं तत्कालीन आवश्यकता के अनुकूल भी रचनाएँ हुईं। भाषा को जनसामान्य के निकट लाने के लिए प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया। छोटे-छोटे वाक्यों की रचना कर भाषा को सरल और बोधगम्य बनाया गया। साहित्य जनसाधारण तक पहुँचे इसके लिए लोक गीतों पर आधारित छंदों का प्रयोग किया गया। उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी भाषा को सरल और बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से किया गया।

बोध प्रश्न 2

(क) भारतेंदु युगीन साहित्य की वस्तुगत विशिष्टताओं का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

(ख) भारतेंदु युग के साहित्य में भाषा के स्तर पर कौन-कौन से नए प्रयोग हुए? (प्रश्न का उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

10.5 भारतेंदु युगीन साहित्य का महत्व

भारतेंदु युग हिंदी साहित्य के इतिहास के महत्वपूर्ण युगों में से एक है। आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रर्वतन और इसके विकास की आधारभूमि का निर्माण इसी युग में हुआ। इस युग में हरिश्चंद्र जैसे व्यक्तित्व के आगमन से हिंदी साहित्य के लिए नया द्वार खुला। हिंदी साहित्य की सेवा के कारण उन्हें युग प्रवर्तक घोषित किया गया। रीतियुग की प्रवृत्तियों को छोड़कर साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का समावेश करने वाले भारतेंदु ही थे। उन्होंने मध्ययुगीन काव्य प्रवृत्तियों को बनाए रखा, किंतु तत्कालीन आवश्यकतानुसार साहित्य को जनसामान्य से जोड़ दिया। रीतिकाल का साहित्य राजसी वातावरण के अंदर ही सिमटा हुआ था। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन के द्वारा आश्रयदाताओं की प्रशंसा करना तथा उन्हीं की अभिरूचि के अनुरूप श्रृंगारपरक रचना करना ही कवि का कर्म बन गया था। भारतेंदु ने साहित्य को इस घेरे से बाहर निकाला, उसे जनता से जोड़ा। भारतेंदु का संपर्क सुदृढ़ प्रौढ़ साहित्यिक परंपरा के साथ था। उनके घर का वातावरण साहित्य के अनुकूल था। पिता अच्छे कवि थे। संगीत की शास्त्रीय परंपरा के साथ भी उनका घनिष्ठ संबंध था, किंतु उन्होंने लोक साहित्य की

अनिवार्यता और उसकी शक्ति को पहचाना। जनजागरण के लिए उन्होंने साहित्य को लोक जीवन के साथ जोड़ दिया। उन्होंने लोक साहित्य के प्रचार और प्रसार के संबंध में लिखाः

''जिन लोगों का ग्रामीणों से संबंध है वे गाँव में ऐसी पुस्तक भेज दें जहाँ कहीं ऐसे गीत सुने उसका अभिनन्दन करें इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे-छोटे छन्दों में और साधारण भाषा में बने, वरंच गंवारी भाषा में स्त्रियों की भाषा में विशेष हों। कजली ठुमरी, खेमका, कहरवा, अद्धा, चैती, होली, सांझी, लम्बे-लावनी जाति के गीत, विरहा, चैनेनी गजल, इत्यादि ग्राम गीतों में इनका प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो– अर्थात पंजाब में पंजाबी, बुन्देलखंड में बुन्देलखंडी, बिहार में बिहारी ऐसे देशों में जिस भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनें।''

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि वे साहित्य को जनसाधारण तक पहुँचाना चाहते थे। इस कार्य के लिए वे खुद आगे बढ़े और अपने सहयोगियों को भी इसके लिए प्रेरित किया। उनकी प्रेरणा से लोक साहित्य की रचना आरंभ हुई। भारतेंदु के साहित्य का नब्बे प्रतिशत भाग जनहित और राष्ट्रहित से संबंधित है। तत्कालीन लेखकों की रचना भी स्वांतः सुखाय कम जनहिताय अधिक है। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल रचना करके साहित्यकारों ने भारतीय जनता को वह शक्ति प्रदान की जिसकी सहायता से जनजागरण का कार्य तो संपन्न हुआ ही, देश को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्ति दिलाने में भी इससे सहायता मिली। पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करके भारतेंदु ने साहित्य के उत्थान का रास्ता प्रशस्त किया। साहित्य को जनसाधारण तक पहुँचाने में तत्कालीन सभी पत्र-पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

भारतेंदु युग का साहित्य उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रारंभ और विकसित हुए धार्मिक, सामाजिक आंदोलनों से प्रभावित रहा। अतीत के गौरव का मूल्यांकन और धार्मिक सामाजिक बुराइयों को दूर करके समाज को एक नई राह पर लाने में तत्कालीन साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारतेंदु युग के साहित्य का महत्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है कि भविष्य में होने वाले हिंदी साहित्य के विकास के लिए उसने आधारभूमि तैयार की। आने वाले द्विवेदी युग की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में भी इस साहित्य का महत्व है।

10.6 सारांश

- भारत में अंग्रेजों के आगमन और उनके द्वारा यहाँ की राजनीति पर अधिकार प्राप्त करने से यहाँ के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन आया।
- हिंदी भाषा साहित्य में गद्य रचना की शुरुआत तो बहुत पहले हो चुकी थी। खड़ी बोली के विकास से गद्य के विकास में और सहायता मिली। किंतु भारतेंदु के आगमन से जहाँ खड़ी बोली का सहज सरल रूप सामने आया, वहीं गद्य की विविध विधाओं का प्रवर्तन भी हुआ।
- भारतेंदु ने तत्कालीन लेखकों को एक नई राह दिखाई।
- भारतेंदु युग में परंपरागत साहित्य रचना का स्थान तो रहा ही साथ ही नवीनता का समावेश भी हुआ।
- भारतेंदु युग में रचा गया साहित्य हमें यह दर्शाता है कि आज हिंदी साहित्य का स्तर जितना ऊँचा है उसे उस स्तर तक पहुँचाने में उस युग के लेखकों की क्या भूमिका रही।

- भारतेंदु युग में खड़ी बोली हिंदी के साथ ब्रजभाषा भी कविता की भाषा बनी रही। गद्य के स्तर पर भाषा का द्वंद्व न था। गद्य रचनाएँ पूर्ण रूप से खड़ी बोली हिंदी में ही की गई।
- भारतेंदु युग के साहित्य का नवजागरण की चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

10.7 शब्दावली

कूटनीति : दाँव पेंच की नीति, छिपी हुई चाल

प्रबुद्ध : ज्ञानी, जागा हुआ, होश में आया हुआ

भंडाफोड़ : छुपी हुई बात को सभी से बताना

बहुदेववाद : अनेक देवताओं की पूजा करने की प्रथा

खामियाँ : कमियाँ

पथ-प्रदर्शक : रास्ता दिखाने वाला

ललक : इच्छा

आक्रोश : क्रोध, गुस्सा

फिजूलखर्ची : अनावश्यक खर्च

तथ्यनिरूपण : किसी बात को सही ढंग से समझाना

10.8 उपयोगी पुस्तकें

- *भारतेंदु समग्र* – हेमंत शर्मा (संपादक), प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, हिंदी प्रचारक संस्थान, बनारस
- *भारतेंदु और अन्य सहयोगी कवि* – किशोरीलाल गुप्त, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस
- *हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास* – हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- *प्रताप नारायण मिश्र : जीवन और साहित्य* – सुरेशचंद्र शुक्ल, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर
- *हरिश्चंद्र* – बाबू शिवनंदन सहाय, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(क) (i) – (ग)

(ii) – (ङ)

(iii) – (क)

(iv) – (ख)

(v) – (घ)

(ख) (i) भारतेंदु ने बंगला से 'विद्या सुंदर' नामक नाटक का अनुवाद किया था।

(ii) 'जमींदार का दृष्टांत' शीर्षक कहानी के लेखक रैवरेंड जे. न्यूटन हैं।

(iii) 'देवरानी जेठानी की कहानी' नामक उपन्यास की रचना 1870 ई. में हुई थी।

(iv) 'बलवंत भूमिहार' के लेखक भुवनेश्वर मिश्र हैं।

(v) 'अकिल अजीरन रोग' शीर्षक निबंध के लेखक बालकृष्ण भट्ट हैं।

(ग) देखिए–भाग 10.3.1

(घ) देखिए–भाग 10.3.1

(ङ) (i) – ✓

(ii) – ×

(iii) – ✓

(iv) – ✓

(च) देखिए–भाग 10.3.2

बोध प्रश्न 2

(क) देखिए–भाग 10.4.1

(ख) देखिए–भाग 10.4.2

इकाई 11 द्विवेदी युग

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 द्विवेदी युगीन हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि

11.2.1 राजनीतिक पृष्ठभूमि

11.2.2 सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि

11.2.3 साहित्यिक पृष्ठभूमि

11.3 द्विवेदी युगीन साहित्यकार

11.3.1 गद्य साहित्यकार

11.3.2 पद्य साहित्यकार

11.4 द्विवेदी युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

11.4.1 विषयों की व्यापकता

11.4.2 राष्ट्रीय काव्यधारा

11.4.3 मानवतावादी दृष्टिकोण

11.5 द्विवेदी युगीन साहित्य का महत्व

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 उपयोगी पुस्तकें

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- द्विवेदी युगीन हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि का विश्लेषण कर सकेंगे;
- द्विवेदी युग से भारतेंदु युग का संबंध बता सकेंगे;
- द्विवेदी युगीन साहित्यकारों के योगदान पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- इस युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों को स्पष्ट कर सकेंगे और
- द्विवेदी युगीन साहित्य के महत्व को रेखांकित कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई – 'भारतेंदु युग' में आपने देखा कि किस प्रकार भारतेंदु जैसे व्यक्तित्व के आगमन से हिंदी साहित्य को नई दिशा मिली। हिंदी साहित्य में गद्य विधाओं का प्रारंभ करके

उन्होंने भाषा साहित्य को आगे बढ़ाने का महान कार्य किया। किंतु खड़ी बोली का रूप अभी स्थिर नहीं हुआ था। ऐसे समय में महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे व्यक्तित्व का आगमन हुआ। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिंदी भाषा को परिनिष्ठित रूप दिया। भाषा-साहित्य को परिमार्जित और सरल रूप प्रदान करने का उनका कार्य चिरस्मरणीय है। इस इकाई में हम उनके कार्यों का विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे। परिस्थितियाँ साहित्य के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। हम उन परिस्थितियों का विश्लेषण करेंगे जिनसे तत्कालीन साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन आया। विदेशी शासन से मुक्ति के लिए एक ओर नेताओं ने आंदोलन शुरू किया तो दूसरी ओर लेखकों ने ऐसे साहित्य की रचना की जिससे लोगों में राष्ट्र के प्रति चेतना फैली। इस इकाई में हम उन साहित्यकारों का परिचय प्राप्त करेंगे तथा उनकी कृतियों की जानकारी भी हासिल करेंगे जिन्होंने समयानुकूल रचना की। द्विवेदी युग में किन-किन विषयों को साहित्य में स्थान दिया गया उसकी भी चर्चा की जाएगी तथा अंत में युगीन साहित्य के महत्व को स्पष्ट किया जाएगा। आइए, सर्वप्रथम तत्कालीन परिस्थितियों की जानकारी हासिल करें।

11.2 द्विवेदी युगीन हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि

परिस्थितियाँ साहित्य पर प्रभाव डालती हैं। आपने देखा कि किस प्रकार भारतेंदु युग में उस समय की परिस्थितियों का प्रभाव साहित्य पर पड़ा। द्विवेदी युग में भी तत्कालीन परिस्थितियों ने युग के साहित्य पर प्रभाव डाला। आइए हम एक-एक कर तत्कालीन परिस्थितियों पर विचार करें। सर्वप्रथम हम राजनीतिक परिस्थितियों को लें।

11.2.1 राजनीतिक पृष्ठभूमि

भारतेंदु युग में राष्ट्रीय चेतना का विकास हो चुका था। द्विवेदी युग में यह चेतना और विकसित हुई। अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करने पर लोगों को पश्चिम की विचारधारा का पता चला। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार से नवजागरण की लहर दौड़ गई। राष्ट्र के उत्थान की भावनाओं के विकास से राजनीतिक क्षेत्र में क्रांति फैल गई। अंग्रेज़ों की नीतियों से जनता के अंदर राष्ट्र के प्रति भावनात्मक आवेश बढ़ता गया। भारतीय जनता को जो कांग्रेस के रूप में एक मंच मिला था उसमें दो दल उभरने लगे। एक गरम दल था तो दूसरा नरम दल। तिलक और गोखले क्रमशः गरम और नरम दल के नेता थे। प्रारंभ में काँग्रेस के भीतर नरम दल का प्रभाव अधिक था। अंग्रेज़ों की जनविरोधी नीति का विरोध सविनय किया जाता था। 1892 ई. में दादाभाई नौरोजी ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य चुने गए। किंतु अंग्रेज़ों की दमनकारी नीति में कोई कमी नहीं आई। उधर अकाल, टैक्स और महामारी से जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। 1896 ई. में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। सरकार की सैनिक कार्रवाई से भी जनता परेशान थी। 1897 ई. में भूकंप और प्लेग के कारण तो बहुत बड़े पैमाने पर तबाही हुई। प्लेग फैलने के समय अंग्रेज अफसर मि. रैंड की हत्या कर दी गई। लेफ्टिनेंट एअरर्ट की हत्या भी इसी समय हुई। अंग्रेज़ों ने इन हत्याओं की शंका में चिपेकर बंधुओं को दंडित किया। वलवंतराव नातू तथा हरियल रामचंद्र नातू को सरकार ने इसलिए निर्वासित किया क्योंकि उन्होंने प्लेग में हुई बर्बादी और फौजियों की ज्यादतियों को प्रकाशित कर जनता तक बात पहुँचाई थी। उधर तिलक ने जनजागरण के लिए 1893 ई. में 'गणेश उत्सव' तथा 1897 ई. में 'शिवाजी उत्सव' शुरू किया। मराठी भाषा में 'केसरी' और अंग्रेज़ी भाषा में 'मराठी' पत्र का प्रकाशन करके उन्होंने जनता में एक नई चेतना फैलाने का कार्य किया। यूँ तो किसी युग के लिए तिथिवार कोई सीमा नहीं बाँधी जा सकती है, किंतु कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर समय सीमा का अनुमान लगाया जा सकता है। द्विवेदी युग के लिए भी ऐसा

ही माना जा सकता है। लगभग सन् 1900 ई. से सन् 1920 ई. तक के काल को द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है। भारत के राजनीतिक क्षेत्र में यह समय बहुत ही उथल-पुथल का रहा। ऊपर कुछ की चर्चा की गई है। हम यहाँ कुछ और घटनाओं की चर्चा करेंगे जिससे स्पष्ट पता चल जाएगा कि इस अवधि के दौरान राजनीतिक क्षेत्र में क्या-क्या उतार-चढ़ाव आए। सन् 1898 ई. में लॉर्ड कर्ज़न भारत का वायसराय बन कर आया। उसी समय प्लेग जैसी महामारी भी फैली। 1899 ई. से 1900 ई. के बीच भीषण अकाल पड़े जिसमें बहुत अधिक जान-माल की बर्बादी हुई। लॉर्ड कर्ज़न साम्राज्यवादी नीति का कट्टर समर्थक था। उसके कार्यों से जनता को घोर कष्ट उठाना पड़ा। तिब्बत सैनिक अभियान का खर्च भारतीय जनता को उठाना पड़ा। उसकी शिक्षा संबंधी नीतियों से यहाँ की जनता को हानि ही हानि हुई। 20 जुलाई 1905 ई. को बंग-भंग करके उसने जन आंदोलन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। प्रवास संबंधी बिल (1907 ई.), सभाबंदी कानून (1908 ई.), प्रेस एक्ट (8 जून 1908 ई.) आदि के कारण जनता का रोष बढ़ता ही गया। एक ओर दमन बढ़ा तो दूसरी ओर जनता द्वारा प्रतिकार के कार्य भी आरंभ हुए। 'युगांतर' और 'संध्या' पत्रिका द्वारा जागरण का विस्तार किया गया तो 'वंदेमातरम्' के नारे के द्वारा जनता के अंदर जोश और उमंग को बुलंद किया गया।

सन् 1905 ई. में लॉर्ड मिन्टो भारत का वायसराय बनकर आया। उसने आते ही भारतीयों पर दमन-चक्र तेज कर दिया। 'वंदेमातरम्' शब्द पर नियंत्रण लगाकर जनता की आवाज को बंद करने का षड्यंत्र रचा गया। 'मिन्टो-मार्ले' सुधार द्वारा अंग्रेज़ भेद नीति को ही कायम रखना चाहते थे। एक ओर तो राष्ट्रीय आंदोलन का प्रसार हो रहा था दूसरी ओर अंग्रेज़ों की कूटनीति के कारण अलगाववाद का बीज भी अंकुरित होने लगा था। 1906 ई. में मुस्लिम लीग की स्थापना से अलगाववाद का पौधा लग गया। लेकिन राष्ट्र को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्ति दिलाने वाले सपूतों ने अपना कार्य शुरू कर दिया था। गदर आंदोलन को सावरकर, अरविंद घोष, बारेंद्र घोष, खुदीराम बोस, धींगरा, लाल हरदयाल जैसे नेताओं ने संपूर्ण देश में फैला दिया। बंग-भंग को लेकर आंदोलन उग्र होता जा रहा था। जिस वर्ष अंग्रेज़ों ने कलकत्ता से बदल कर दिल्ली को भारत की राजधानी बनाया, उसी वर्ष यानी सन् 1911 ई. में बंग-भंग को रद्द भी किया गया। जनता के रोष का परिणाम सामने आने लगा था। सन्1914 ई. में गांधी जी का भारत में आगमन हुआ। इसके पहले वे दक्षिण अफ्रीका में सरकार के अमानुषिक अत्याचार के खिलाफ सफल आंदोलन चला चुके थे। भारत की राजनीति में गांधी के प्रवेश से एक नए दौर की शुरुआत हुई। 1916 ई. में गांधी और मदनमोहन मालवीय द्वारा आंदोलन शुरू किया गया जिसमें मजदूरों को देश से बाहर भेजने का कड़ा विरोध किया गया था। 1917 ई. में बाध्य होकर सरकार ने इस प्रथा पर रोक लगा दी। 1916 ई. में खिलाफत आंदोलन शुरू हुआ। इस आंदोलन से यह साफ़ जाहिर हो गया कि एक ओर काँग्रेस है तो दूसरी ओर मुस्लिम लीग। गांधी काँग्रेस के नेता बने तो जिन्ना मुस्लिम लीग के। 1914-1918 ई. के बीच प्रथम विश्व युद्ध के दौरान गांधी और तिलक ने अंग्रेज़ों का साथ दिया। किंतु परिणाम उल्टा निकला। अंग्रेज़ों का जुल्म और बढ़ गया। 1915 ई. में श्रीमती एनी बेसेंट ने भारतीय राजनीति में कदम रखा। 1915 ई. में ही भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दो बड़े नेताओं, गोपालकृष्ण गोखले और फिरोज़शाह मेहता की मृत्यु हो गई। तिलक जनजागरण का कार्य कर रहे थे। अंग्रेज़ों को डर था कि तिलक की लोकप्रियता कहीं उनकी सरकार को न डगमगा दे। इस कारण कई झूठे आरोप लगाकर उन्हें जेल भेज दिया गया। 1914 ई. में उन्हें मांडले जेल से छोड़ा गया। 1915-16 ई. में उन्होंने राष्ट्रीय दल का संगठन किया। आयरलैंड से प्रेरणा पाकर 1916 ई. में पूना में उन्होंने होमरूल लीग की स्थापना की। इस लीग की स्थापना से देश के नवयुवकों में स्वराज्य प्राप्ति की चेतना का

विकास हुआ। राष्ट्रीय साहित्य की रचना की जाने लगी। तिलक का स्वास्थ्य खराब होने पर होमरूल लीग को ऐनी बेसेंट ने सफलतापूर्वक चलाया। इस होमरूल लीग के प्रयत्न से ही भाषा के आधार पर प्रांतों का पुनर्निर्माण तथा राष्ट्रीय तिरंगा झंडा का स्वरूप सामने आया। सरकार की भेदभावपूर्ण नीतियों से एक ओर जनता का रोष बढ़ता जा रहा था वहीं गरम और नरम दल में दूरी भी बढ़ती जा रही थी। 1919 ई. का वर्ष राजनीतिक घटनाओं से भरपूर रहा। गांधी जी ने रौलेट ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू कर दिया। सारे देश में सरकार के विरुद्ध आंदोलन शुरू हो गया। पंजाब के गर्वनर माइकल ओ. डायर ने जलियावाला बाग में हो रही शांत सभा पर गोलियाँ चलवा कर नरसंहार किया। सारा देश इस नरसंहार से क्षुब्ध हो उठा। 1919 ई. में ही नई कौंसिलों के चुनाव के विरुद्ध असहयोग आंदोलन शुरू हुआ। अगस्त 1920 ई. में गरम दल के नेता लोकमान्य तिलक का निधन को गया। सारा देश इस महान् सपूत के खोने पर शोकमग्न हो गया।

1900 ई. से 1920 ई. के बीच जितनी भी राजनीतिक घटनाएँ घटीं उनका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ा। गांधी जी के सत्य, अहिंसा, मानवता, बंधुत्व और राष्ट्रीयता का स्थायी प्रभाव हम तत्कालीन साहित्य पर स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। श्रीधर पाठक, नाथूराम शंकर शर्मा, महावीरप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त तथा गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि साहित्यकारों की रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

11.2.2 सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि

द्विवेदी युग में सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में बहुत बड़ा परिवर्तन आ रहा था। यह परिवर्तन तत्कालीन समाज सुधार आंदोलनों द्वारा उपस्थित हुआ था। पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान से संपर्क होने के साथ ही किसी भी बात को वैज्ञानिक दृष्टि से परखने की शक्ति का विकास हुआ। पश्चिम में विकसित भाईचारे और समानता के भाव ने यहाँ के प्रबुद्ध वर्ग को प्रभावित किया था। राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, ऐनी बेसेंट और रानाडे जैसे समाज सुधारक नेताओं ने सामाजिक और धार्मिक पुनरुद्धार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, वेदांत दर्शन, तदीय समाज, गांधीवादी विचारधारा, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसॉफिकल सोसाइटी आदि सबने अपने-अपने तरीकों से सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। इसमें दादाभाई नौरोजी, गोखले, तिलक आदि के विचारों और कार्यों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। यद्यपि द्विवेदी युग के आरंभ के समय तक दयानंद, रामकृष्ण, विवेकानंद आदि का देहांत हो चुका था। कई अमानुषिक प्रथाएँ भी ढीली पड़ गई थीं, किंतु छुआछूत, बाल विवाह, विधवा-विवाह निषेध, स्त्री शिक्षा का अभाव, पर्दा-प्रथा, वर्ण-भेद, अंधविश्वास आदि कुरीतियाँ समाज को खोखला कर रही थीं। तत्कालीन नेताओं ने इन सब कुरीतियों को समूल नष्ट करने के लिए कार्य किए। रेल, तार, मुद्रण के प्रसार और समुद्र यात्रा, शिक्षा का प्रसार आदि द्वारा सामाजिक रूढ़ियाँ टूटने लगीं। तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन ने सामाजिक कुरीतियों को प्रभावित किया। राष्ट्र को स्वतंत्र कराने की भावना ने लोगों की जाति, धर्म, वंश से ऊपर उठने के लिए प्रेरित किया। हिंदू-मुस्लिम एकता, हरिजनोद्धार आदि के लिए नेताओं ने कई कार्य किए। आर्य समाज द्वारा चलाये गए शुद्धि आंदोलन ने जहाँ हिंदुओं की बिखरी हुई जातियों को एकजुट होने के लिए प्रेरणा दी वहीं हिंदू और मुस्लिमों को एकजुट करने के लिए भी कई कार्यक्रम बनाए गए। तर्क, बुद्धि, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नवीन शिक्षा और आविष्कारों से लोगों को एक नए राह पर चलने की प्रेरणा मिली। वैज्ञानिक आविष्कारों ने लोगों के बीच की दूरी को कम किया।

इस युग में पौराणिक धर्म की प्रमुखता के कारण बहुदेववाद, तीर्थयात्रा, व्रत, कर्मकांड, मूर्तिपूजा और त्योहारों का बोलबाला था। आर्य समाज द्वारा इन भेदों को दूर करने का प्रयत्न किया गया। एकेश्वरवाद का प्रचार करके आर्य समाज ने लोगों को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। धार्मिक संस्कारों को तत्कालीन नेताओं ने नया रूप दिया। गीता के मानव धर्म का संदेश फैलाया गया। लोकमान्य तिलक, एनी बेसेंट तथा महात्मा गांधी ने गीता की अपने-अपने ढंग से व्याख्या की। उन्होंने समाज को मानव मात्र से प्रेम करने का संदेश दिया। इस प्रकार समग्र रूप से द्विवेदी युग सामाजिक और धार्मिक सुधारवाद का युग था।

11.2.3 साहित्यिक पृष्ठभूमि

भारतेंदु के अवसान के बाद हिंदी की उन्नति में शिथिलता आ गई थी। अनुवाद और अनुकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। साहित्यिक गतिविधियों को नियंत्रित करने वाला कोई नेता नहीं था। एक ओर तिलक आदि राष्ट्रीय विचारधारा को फैला रहे थे तो दूसरी ओर हिंदी जगत में अनिश्चितता का वातावरण बना हुआ था। राष्ट्रीयता को वाणी देने के लिए एक सशक्त भाषा की आवश्यकता थी। अंग्रेज़ भाषा-भेद नीति को बनाए रखकर अपना कार्य सिद्ध करना चाहते थे। किंतु हिंदी प्रेमियों द्वारा हिंदी की उन्नति के प्रयास जारी थे।

पं. मदनमोहन मालवीय, श्यामसुंदर दास, महावीरप्रसाद द्विवेदी और बालमुकुंद गुप्त के प्रयत्न से लेफ्टिनेन्ट गवर्नर एटनी मेकडॉनल्ड ने अदालत में हिंदी भाषा और नागरी लिपि के व्यवहार के लिए आज्ञा पत्र निकाला। राजनीतिक आंदोलनों और वैज्ञानिक आविष्कारों तथा ईसाई मिशनरियों के प्रयत्न से हिंदी के विकास में सहायता पहुँची। किंतु जैसा कि ऊपर हमने चर्चा की है कि हिंदी भाषा में अनुकरण की प्रवृत्ति बढ़ी थी। भाषा अनगढ़ थी। काव्य अपरिनिष्ठित और काव्योचित गुणों से विहीन हो रही थी। व्यवस्थित भाषा के अभाव के कारण हिंदी साहित्य का स्तर गिरता जा रहा था। ऐसे समय में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भाषा का संस्कार शुरू किया। उस समय खड़ी बोली में रचना करने वाले अलग-अलग रचना सि़द्धांत रखते थे। अंग्रेज़ी, बंगला, संस्कृत आदि के काव्य के अनुसार कई शैलियाँ चल पड़ी थीं। द्विवेदी जी ने काव्य रचना के क्षेत्र में काव्य-भाषा को परिमार्जित और स्थिर रूप देने के लिए कार्य किया। एक समर्थ आलोचक की भाँति उन्होंने विभिन्न रचनाकारों की रचना को सुधारा। भाषा को सजाने सँवारने का कार्य उन्होंने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से किया। गद्य और पद्य की एक भाषा के लिए द्विवेदी जी ने अथक परिश्रम किया। उनकी लगन से ही खड़ी बोली का परिमार्जित रूप उभर कर सामने आया और पद्य तथा गद्य की भिन्न भाषा का झगड़ा दूर हो गया। मुख्य रूप से उन्होंने भाषा को प्रसाद गुण से युक्त, व्याकरण संबंधी अशुद्धियों से दूर, अभिव्यंजना शक्ति से पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया। रचनाकारों को उन्होंने शब्दाडंबर से बचने और अश्लील तथा ग्राम्य शब्द प्रयोग से बचने का सुझाव दिया। उन्होंने लेखकों को देशज शब्द के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया। मुहावरों का प्रयोग तथा स्वाभाविक अलंकारों के प्रयोग के लिए प्रेरित किया। उन्होंने भारतेंदु काल की भाषायी त्रुटियों को दूर करके साहित्य को एक अनुशासित रूप प्रदान किया। पत्र-पत्रिकाओं द्वारा नवीन विचारधारा का प्रचार जोरों से हुआ। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में 'नागरी प्रचारिणी', 'सरस्वती', 'इंदु', 'मर्यादा', 'प्रताप', 'अभ्युदय', 'प्रभा', 'भारतमित्र', 'सैनिक', 'अर्जुन' तथा 'आज' ने राष्ट्रीय चेतना को फैलाने में योगदान दिया। इस प्रकार द्विवेदी युगीन साहित्य एक नई दिशा की ओर अग्रसर हुआ।

11.3 द्विवेदी युगीन साहित्यकार

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। हिंदी की उन्नति के लिए

किए गए उनके कार्यों से साहित्य का विकास विस्तार हुआ। विभिन्न गद्य विधाओं में रचनाएँ होने लगीं। काव्य रचना के लिए विषय वस्तु का विस्तार हुआ। भारतेंदु 35 वर्ष की अल्पायु में ही हिंदी भाषा साहित्य के लिए इतना कुछ कर गए जिससे उन्हें युग निर्माता की संज्ञा दी गई। किंतु उनके निधन के बाद हिंदी साहित्य में कोई ऐसा नेतृत्वकर्ता नहीं रहा जो भाषा साहित्य को दिशा निर्देश दे। महावीरप्रसाद द्विवेदी के आगमन से यह कमी दूर हुई। सन् 1903 ई. में 'सरस्वती' का संपादक बनने के बाद इस पत्रिका के माध्यम से द्विवेदी जी ने हिंदी भाषा-साहित्य को इस अराजकता के घेरे से बाहर निकाला।

'सरस्वती' में लेख और टिप्पणियाँ लिखकर उन्होंने लगातार हिंदी भाषा साहित्य के उन्नति के लिए कार्य किया। अंग्रेजों के द्वारा अपनाई गई भाषा संबंधी भेद नीति को वे अच्छी प्रकार समझते थे। उर्दू-हिंदी के झगड़े को जड़ से दूर करने के उद्देश्य से वे बराबर लिखते रहे। 'देश व्यापक भाषा' लेख जो सितम्बर-अक्टूबर 1903 ई. की 'सरस्वती' पत्रिका में छपा था उसका कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है जिससे आपको अनुमान लग जाएगा कि तत्कालीन समय में उन्होंने हिंदी भाषा साहित्य के लिए कितना महत्वपूर्ण कार्य किया।

> *''संयुक्त प्रांत, मध्य प्रदेश, मध्य भारत, राजपूताना और बिहार की भाषा हिंदी है। पंजाब में जो भाषा बोली जाती है वह भी हिंदी ही है, क्योंकि उर्दू कोई भिन्न भाषा नहीं। वह हिंदी की ही एक शाखा है। हिंदी का और उर्दू का व्याकरण एक ही है। फारसी और अरबी के शब्दों की प्रचुरता होने से उर्दू उन लोगों की समझ में अच्छी तरह नहीं आ सकती जिनको इन दो भाषाओं के शब्दों का थोड़ा ज्ञान नहीं है। उर्दू की यदि यह कठिनता निकाल दी जावे तो उसमें और बोलचाल की साधारण हिंदी में कुछ भी अंतर न रहे। इसलिए उर्दू को हिंदी ही समझना चाहिए।''*

इस प्रकार उर्दू की कठिनता को समाप्त कर वे जनता के निकट की बोलचाल की भाषा को बढ़ावा देना चाहते थे। इसी प्रकार के विभिन्न लेखों के माध्यम से उन्होंने हिंदी भाषा साहित्य को एक सुदृढ़ परिमार्जित रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आइए इस युग के साहित्यकारों और उनकी रचनाओं को जानें।

11.3.1 गद्य साहित्यकार

द्विवेदी युग में कई महत्वपूर्ण गद्य रचनाकार हुए और उन्होंने महत्वपूर्ण गद्य रचनाएँ कीं। विशेष रूप से उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि गद्य विधाओं का विकास इसी युग में हुआ। इन विधाओं का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बना। बाद में इन विधाओं के इन्हीं स्वतंत्र व्यक्तित्व की नींव पर महान साहित्यकारों का निर्माण हुआ। नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद, उपन्यास तथा कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद, निबंध के क्षेत्र में बालमुकुंद गुप्त, पूर्ण सिंह, रामचंद्र शुक्ल तथा आलोचना के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल जैसे महान साहित्यकार इसी युग में हुए। इन विधाओं के अलावा आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, रेखाचित्र आदि नई विधाओं का सूत्रपात भी इसी युग में हुआ।

नाटक

आप यह जान चुके हैं कि हिंदी में नाटकों की शुरुआत भारतेंदु ने की। उनके प्रयास से इस विधा का विकास हुआ। उस युग के सभी लेखकों को भारतेंदु से प्रेरणा मिली थी और सभी ने अपने-अपने तरीके से नाटक के विकास में योगदान दिया। उस समय नाटक लिखे भी जाते थे और उनका मंचन भी होता था। यही कारण है कि उस समय इस विधा का विकास हुआ, किंतु द्विवेदी युग तक आते-आते इस विधा का विकास रुक सा गया। यद्यपि इस युग

में भी नाटकों की रचना हुई, लेकिन उस गति से नहीं जिस गति से भारतेंदु युग में हुई थी। द्विवेदी युग में बंगला, संस्कृत, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में रचित नाटकों का अनुवाद हुआ। संस्कृत के नाटकों में भवभूति, कालिदास आदि के नाटकों के अनुवाद हुए जो बहुत लोकप्रिय हुए। बंगला के जिन लेखकों के नाटक अनुदित हुए उनमें द्विजेंद्रलाल राय, रवींद्रनाथ ठाकुर, क्षीरोदप्रसाद, गिरीश बाबू आदि प्रमुख हैं। अंग्रेज़ी के महान् नाटककार शेक्सपीयर के नाटकों ('मैक़बेथ', 'रोमियो-जूलियट', 'हैमलेट') के अनुवाद हुए। इस युग में मौलिक नाटकों की भी रचना हुई। पं. किशोरीलाल गोस्वामी ने 'चौपट चपेट' तथा 'मयंकमंजरी' नाटकों की रचना की। पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र ने 'सीताबनवास', अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'रूक्मिणी', बाबू शिवनंदन सहाय ने 'सुदामा' नाटक की रचना की। ये मौलिक नाटक अत्यंत साधारण स्तर के थे। इस युग में पारसी थियेटरों का खूब विकास हुआ हालाँकि उसमें मनोरंजन प्रधान नाटकों का बोलबाला था। पारसी थियेटर के अनुरूप नाटक लिखने वालों में हरिकृष्ण 'जौहर', तुलसीदत्त 'शैदा', राधेश्याम कथावाचक, नारायण प्रसाद 'बेताब' आदि प्रमुख नाम हैं। नाटक विधा में उन्नति उस समय हुई जब जयशंकर प्रसाद ने इस विधा में लेखन किया। उन्होंने उत्कृष्ट साहित्यिक नाटकों की रचना की। यद्यपि जयशंकर प्रसाद ने द्विवेदी युग के दौरान नाट्य लेखन की शुरूआत कर दी थी परंतु इस विधा में उनकी बेहतरीन रचनाएँ विवेच्य युग के बाद आईं। इस कालखंड में प्रकाशित उनकी प्रमुख नाट्य-रचनाएँ हैं – 'सज्जन' (1910 ई.), 'वभ्रुवाहन' (1911 ई.), 'कल्याणी परिणय' (1912 ई.), 'करुणालय' (1912 ई.), 'प्रायश्चित' (1914 ई.) तथा 'राजश्री' (1915 ई.)। इनमें से 'करुणालय' गीति नाट्य है।

उपन्यास

गद्य विधाओं में जिस विधा को सबसे अधिक लोकप्रियता मिली वह है उपन्यास। इसे आधुनिक युग के महाकाव्य की संज्ञा भी दी गई है। जीवन के विभिन्न पक्षों को इस विधा के माध्यम से उजागर किया गया। इस विधा में मानव जीवन के बाहरी पक्ष के अलावा भीतरी पक्ष अर्थात मनोभावों को भी विशद रूप से वर्णित किया जा सकता है। इन्हीं गुणों के कारण यह विधा जनसाधारण में बहुत लोकप्रिय हुई।

हिंदी में उपन्यास विधा की शुरूआत भारतेंदु युग में ही हो चुकी थी। भारतेंदु युग में ऐतिहासिक, उपदेश प्रधान तथा मनोरंजन प्रधान उपन्यास लिखे गए। 'बलवंत भूमिहार' आदि यथार्थपरक उपन्यास भी उस युग में लिखे गए। लेकिन उपन्यास विधा के इस स्वरूप (यथार्थपरक) का पूर्ण विकास भारतेंदु युग में नहीं हो पाया था।

द्विवेदी युग में बहुत से ऐसे भी उपन्यासकारों ने औपन्यासिक रचना की जो भारतेंदु युग से लिख रहे थे। ऐसे उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम प्रमुख है। इन्होंने 65 के करीब छोटे-बड़े उपन्यासों की रचना की। गोस्वामी जी 'उपन्यास' नाम का मासिक पत्र भी निकाला करते थे। इनके कुछ उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं– 'तारा', 'तरुण', 'तपस्विनी', 'चपला', 'लीलावती', 'रजिया बेगम', 'लवंगलता' आदि। द्विवेदी युग में ही 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' उपन्यासों की रचना हुई। क्रमशः इसके रचयिता थे– पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा लज्जाराम मेहता। इस युग के अन्य उपन्यासकार– बाबू ब्रजनंदन सहाय, राधाकांत आदि हैं। उपन्यास के क्षेत्र में इसी युग में प्रेमचंद जैसे व्यक्तित्व का पदार्पण होता है। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यासों की रचना कर भाषा साहित्य के भंडार में अमूल्य सामग्री भेंट की। पहले ये उर्दू में लिखते थे किंतु उर्दू में लिखे उपन्यासों का हिंदी संस्करण द्विवेदी युग में ही प्रकाशित होने लगा। 'प्रेमा' और 'वरदान' सन् 1915 ई. में प्रकाशित हुआ। इस युग में अन्य भाषाओं में रचित उपन्यासों के अनुवाद भी हुए। विशेष रूप से बंगला के

उपन्यासकारों के उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए। बंगला के जिन उपन्यासकारों के उपन्यास का अनुवाद हुआ उनमें बंकिमचंद्र, रमेशचंद्र दत्त, शरतचंद्र, हाराणचंद्र रक्षित तथा रवींद्रनाथ ठाकुर प्रमुख हैं।

कहानी

भारतेंदु युग में रेवरेंड जे. न्यूटन, राजा शिवप्रसाद सिंह आदि ने कहानी विधा में छिट-पुट प्रयास किए थे, लेकिन जिसे आधुनिक अर्थ में कहानी कहा जाता है उसका लेखन द्विवेदी युग में आकर ही हुआ। आधुनिकता के तत्वों से युक्त कहानियों की रचना 1900 ई. के बाद ही हुई। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 1900 ई. में छपी किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इंदुमती' को हिंदी की प्रथम कहानी बतलाया था। बाद में यह कहानी शेक्सपीयर के नाटक 'टेम्पेस्ट' की छाया साबित हुई। इसके बाद 1901 ई. में छपी माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' प्रकाशित हुई। यह हिंदी की प्रथम कहानी है। इस दशक में जो अन्य कहानियाँ प्रकाशित हुईं वे इस प्रकार हैं :

वर्ष		कहानीकार		कहानी
1902 ई.	–	मास्टर भगवानदास	–	प्लेग की चुड़ैल
1902 ई.	–	किशोरीलाल गोस्वामी	–	गुलबहार
1903 ई.	–	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	–	ग्यारह वर्ष का समय
1903 ई.	–	पं. गिरिजादत्त वाजपेयी	–	पंडित और पंडितानी
1907 ई.	–	बंग महिला	–	दुलाईवाली
1909 ई.	–	वृंदावनलाल वर्मा	–	राखीबंद भाई

द्विवेदी युग का उत्तरार्द्ध हिंदी कहानी की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। इस अवधि में हिंदी के अनेक महत्वपूर्ण कहानीकारों का उदय हुआ। 1911 ई. में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'सुखमय जीवन' तथा जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' प्रकाशित हुई। प्रेमचंद की पहली कहानी 'सौत' 1915 ई. में प्रकाशित हुई। आगे चलकर प्रेमचंद ने हिंदी कहानी को नई दिशा दी। उन्होंने अपनी कहानियों में उत्तर भारतीय समाज की तमाम समस्याओं, संकीर्णताओं और रूढ़ियों को अपना विषय बनाया। तत्कालीन दौर में चल रहे स्वराज आंदोलन के विविध पहलुओं को भी अपनी कहानी के माध्यम से व्यक्त किया। 1915 ई. में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' का प्रकाशन हुआ। इस युग के अन्य प्रमुख कहानीकार हैं – विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, जी.पी.श्रीवास्तव, चतुरसेन शास्त्री आदि।

निबंध

निबंध विधा का विकास भी भारतेंदु युग में हो चुका था। इस युग के निबंधकारों ने निबंधों के माध्यम से जहाँ सामाजिक चेतना फैलायी वहीं राष्ट्रीय भावना को बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। व्यंग्य और विनोद से पूर्ण रचनाएँ भी हुईं। द्विवेदी युग में निबंध विधा का और विकास हुआ। इस विधा को आगे बढ़ाने में स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी का महत्वपूर्ण योगदान था। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने इस विधा में लेखन के लिए लेखकों को प्रोत्साहित किया। द्विवेदी जी ने ऐतिहासिक ज्ञान-विषयक, पुरातत्व तथा समीक्षा संबंधी अनेकों उपयोगी निबंधों की रचना की। निबंध के क्षेत्र में उनका एक महत्वपूर्ण कार्य था

अंग्रेज़ी के निबंधकार बेकन के निबंधों का अनुवाद। इस अनुवाद को उन्होंने 'बेकन विचार रतनावली' के नाम से प्रकाशित किया था। इसके द्वारा तत्कालीन अन्य लेखकों को निबंध लिखने की प्रेरणा मिली।

इस युग में कई पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से इस विधा का विकास हुआ। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (1896), 'समालोचक' (1902), 'इंदु' (1909), 'मर्यादा' (1910) तथा 'प्रभा' (1913) में विभिन्न विषयों से संबंधित निबंध छपा करते थे। बालमुकुंद गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुंदर दास, रामचंद्र शुक्ल, सरदार पूर्ण सिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, माधव प्रसाद मिश्र आदि ने महत्वपूर्ण निबंधों की रचना की। द्विवेदी जी के निबंध विचार प्रधान होते थे। सरदार पूर्ण सिंह ने कुल छह निबंधों की रचना की है। इन्होंने सामाजिक और नैतिक विषयों से संबंधित निबंधों की रचना की। इनके कुछ महत्वपूर्ण निबंधों के नाम इस प्रकार हैं – 'आचरण की सभ्यता', 'सच्ची वीरता', 'मजदूरी और प्रेम' आदि।

बालमुकुंद गुप्त ने समसामयिक राजनीति को निबंध के विषय के रूप में चुना। व्यंग्यात्मक भाषा और तीव्र राष्ट्रीय भावना इनके निबंधों की विशेषता है। 'शिवशंभु के चिट्ठे' इनका महत्वपूर्ण निबंध है।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी द्विवेदी युग के अन्य महत्वपूर्ण निबंधकार हैं। इन्होंने गवेषणापूर्ण गंभीर विषय को लेकर सरल सहज शैली में निबंधों की रचना की। मार्मिकता और व्यंग्य इनके निबंधों की विशेषता है। 'कछुआ धर्म', 'मारेसि मोहिं कुठाँव' आदि इनके प्रसिद्ध निबंध हैं।

रामचंद्र शुक्ल ने भी इसी युग में निबंधों की रचना की। उनके प्रारंभिक निबंधों में भी वे विशेषताएँ मिल जाएँगी जिसे उन्होंने बाद के निबंधों में विकसित रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने विविध विषयों पर निबंध रचना की। गंभीरता और विवेचन तथा तीखा व्यंग्य उनके निबंधों की विशेषता है। आचार्य शुक्ल ने मुख्य रूप से साहित्यिक विषयों पर तथा मनोवैज्ञानिक निबंध लिखा है।

बोध प्रश्न-1

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-एक पंक्तियों में दीजिए।

(i) महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक कब बने?

....

(ii) 'ठेठ हिंदी की ठाठ' उपन्यास के लेखक कौन हैं?

....

(iii) 'राजश्री' नाटक किसकी रचना है?

....

(iv) किशोरीलाल गोस्वामी किस पत्रिका का संपादन करते थे?

....

(v) 'सुदामा' नाटक के लेखक कौन हैं?

....

(ख) नीचे कुछ कहानियों के शीर्षक दिए जा रहे हैं, उनके सामने उनके लेखकों के नाम लिखिए।

कहानी	**लेखक**
(i) दुलाईवाली	....
(ii) ग्राम	....
(iii) राखीबंद भाई	....
(iv) सौत	....
(v) एक टोकरी भर मिट्टी	....

(ग) द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार तथा उनकी विशिष्टताओं का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

(घ) द्विवेदी युग में कहानी विधा में हुए विकास का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

11.3.2 पद्य साहित्यकार

लगभग बीस वर्ष की अवधि (1900 ई. से 1920 ई.) को द्विवेदी युग माना जाता है। इस अवधि में बहुत से कवि ऐसे हैं जो 1900 ई. से पहले से भी रचना कर रहे थे और 1920 ई. के बाद काफी दिनों तक काव्य रचना करते रहे। इसलिए अवधि की सीमा के अंदर हम रचनाओं को बाँध नहीं सकते। यही कारण है कि जब किसी युग विशेष के संदर्भ में कवि का उल्लेख करते हैं तो इसका तात्पर्य यह होता है कि उस कवि की रचना की प्रवृत्ति उस काल-विशेष में क्या रही। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर द्विवेदी युग के रचनाकारों का परिचय दिया जा रहा है।

(1) श्रीधर पाठक

श्रीधर पाठक भारतेंदु युग से ही हिंदी साहित्य में सक्रिय थे। इन्होंने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों में रचनाएँ कीं। इन्होंने समाज सुधार, देशभक्ति तथा प्रकृति विषयक कविताएँ लिखीं। प्रकृति विषयक कविताओं में इन्हें सर्वाधिक सफलता मिली। 'कश्मीर-सुषमा', 'देहरादून' आदि विवेच्य अवधि के दौरान लिखी गई रचनाएँ हैं।

(2) मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सबसे महत्वपूर्ण कवि हैं। द्विवेदी जी की प्रेरणा से ही वे काव्य रचना में प्रवृत्त हुए। उनकी प्रथम कविता 'हेमंत' 1905 ई. में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। इन्होंने कुल 40 मौलिक और 6 अनुदित ग्रंथों की रचना की तथा कुछ फुटकर रचनाएँ भी कीं। पौराणिक कथाओं से विषय लेकर उन्होंने काव्य रचनाएँ कीं। विश्व कवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने 'काव्येर उपेक्षिता' नाम से एक लेख लिखा था। इस लेख में उन्होंने उन नारी चरित्रों का उल्लेख किया था जिन पर बहुत कम लिखा गया था। गुप्त जी ने वह लेख पढ़ा और उन्हें प्रेरणा मिली। उर्मिला, कैकेयी, यशोधरा, विष्णुप्रिया, हिडिंबा आदि पौराणिक महिला पात्रों को उन्होंने काव्य रचना के लिए चुना। नारी की गौरव गाथा का गान कर उन्होंने पुरुष शाषित समाज में उन्हें उचित और समान अधिकार दिलाने का प्रयास किया। महाभारत और रामायण की कथाओं के माध्यम से उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को वाणी दी। तत्कालीन भारत में स्वतंत्रता आंदोलन की तैयारी चल रही थी। राजनेता इस प्रयास में लगे हुए थे। कवियों ने काव्य रचना द्वारा इसमें अपना सहयोग दिया। 'भारत भारती' (1912 ई.) की रचना कर गुप्त जी ने देशवासियों को आत्मोद्धार के लिए प्रेरित किया। पश्चिम की विचारधारा का प्रभाव भारत पर पड़ रहा था। भाईचारे और मानवतावादी भावना का प्रवेश काव्य में भी हुआ। 'साकेत' (1931 ई.) में कवि ने राम को मानव के रूप में प्रस्तुत किया। यहाँ राम किसी को स्वर्ग का सुख देने के लिए परलोक की बात नहीं करते बल्कि इस भूतल को ही स्वर्ग बनाना चाहते हैं। इस प्रकार की प्रगतिशील विचारधारा के द्वारा कवि ने समाज उत्थान की ही बात कही।

'साकेत' जैसे प्रबंध काव्य के साथ-साथ 'विष्णुप्रिया' जैसे खंडकाव्य की रचना उन्होंने की। उनकी अन्य काव्य रचनाओं में 'ग्राम्या', 'ग्रंथि', 'पंचवटी', 'यशोधरा', 'जनक', 'किसान', 'जयद्रथवध', 'मंगलघर', 'वीरांगना', 'वैतालिक', 'सिद्धराज', 'स्वदेश संगीत' आदि महत्वपूर्ण हैं।

(3) पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी

पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी खड़ी बोली कविता के प्रेरणा स्रोत थे। उन्होंने तत्कालीन कवियों को

खड़ी बोली में कविता करने के लिए प्रेरित ही नहीं किया बल्कि उसके रूप को स्थिर करने के लिए भगीरथ प्रयास भी किया। यद्यपि वे स्वयं कवि थे, लेकिन कवि से ज्यादा कवि निर्माता थे। गद्य-पद्य की विभिन्न शैलियों के निर्माण के लिए उन्होंने महान प्रयास किया। उन्होंने आठ अनुदित तथा नौ मौलिक काव्य रचनाएँ कीं। अनुदित रचनाएँ इस प्रकार हैं :

(i) विनय विनोद – सन् 1899 ई. में भतृहरि के 'वैराग्य शतक' का दोहों में अनुवाद।

(ii) विहार वाटिका–सन् 1890 ई. में संस्कृत वृत्तों में जयदेव 'गीत गोविंद' का संक्षिप्त भावानुवाद।

(iii) स्नेहमाला– सन् 1890 ई. में भतृहरि के 'श्रृंगार शतक' का दोहों में अनुवाद।

(iv) श्री महिम्न स्रोत– सन् 1885 ई. में अनुवाद। इसका प्रकाशन 1890 ई. में हुआ। यह संस्कृत महिम्न स्रोत का संस्कृत वृत्तों में अनुवाद है।

(v) गंगालहरी– सन् 1891 ई. में पंडितराज जगन्नाथ की 'गंगालहरी' का सवैया छंद में अनुवाद।

(vi) ऋतु-तरंगिणी–सन् 1891 ई. में कालिदास के 'ऋतुसंहार' की छाया लेकर किया गया षड्ऋतु वर्णन।

(vii) सोहागरात– (अप्रकाशित) वायरन के 'ब्राईडल नाइट' का छायानुवाद।

(viii) कुमारसंभव सार– 1902 ई. में कालिदास के 'कुमारसंभव' के प्रथम पाँच सर्गों का पद्यात्मक सारांश।

द्विवेदी जी की मौलिक पद्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :

(i) देवीस्तुति

(ii) समाचार पत्र संपादक स्तव

(iii) नागरी

(iv) काव्य मंजूषा

(v) कान्यकुब्ज अबला-विलाप

(vi) सुमन

(vii) द्विवेदी काव्य माला

(4) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

हरिऔध जी द्विवेदी युग के दूसरे बड़े कवि हैं। ये कृष्णभक्त थे। इन्होंने ब्रजभाषा में कई भक्ति सवैये ग्रंथों की रचना की। ये सुधारवादी आंदोलन से प्रभावित थे। उनकी रचनाएँ हैं– 'प्रिय प्रवास', 'प्रेमाम्बु-वारिधि', 'प्रेम प्रपंच प्रेमाम्ब', 'प्रयवेक्षण', 'प्रेमाम्बु प्रवाह'। खड़ी बोली में उन्होंने पहली रचना 1900 ई. में की जो 1904 ई. में 'प्रेमपुष्पाहार' नाम से स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हुई। 'प्रिय प्रवास' (1914 ई.) उनकी सबसे महत्वपूर्ण रचना है। तत्कालीन सामाजिक आंदोलन का प्रभाव सभी कवियों पर पड़ा था। 'हरिऔध' जी ने इस रचना में उदात्त मानवीय रूपों को प्रस्तुत किया है। परंपरागत नारी वर्णन की अपेक्षा इस रचना में उसे देश सेविका, लोक सेविका, जन्मभूमि, प्रेमिका आदि रूपों में प्रस्तुत किया गया है।

(5) रामनरेश त्रिपाठी

स्वच्छंदतावादी कवियों में रामनरेश त्रिपाठी का नाम प्रथम है। वे ब्रजभाषा से शुरू करने के बाद खड़ी बोली में कविता करने लगे। खड़ी बोली में इनकी प्रथम रचना 'जन्मभूमि भारत' है। तत्कालीन परिस्थिति के अनुकूल इस कविता में देश के प्रति भक्ति की भावना भरी हुई है। 'मिलन' त्रिपाठी जी का प्रथम काव्य ग्रंथ है। इसका प्रकाशन 1917 ई. में हुआ। इस रचना में दांपत्य प्रेम, देश प्रेम और देश पर बलिदान होने का वर्णन है। 'पथिक' उनका दूसरा काव्य ग्रंथ है। यह 1920 ई. में प्रकाशित हुआ। इस रचना में प्रकृति वर्णन और प्रेम भावना का सुंदर चित्रण हुआ है। त्रिपाठी जी की फुटकर रचनाएँ हैं– 'जन्मभूमि भारत', 'स्वदेश गीत', 'महापुरुष के लक्षण' 'हिंदुओं की हीनता'। द्विवेदी युगीन काव्यकला का दर्शन हम उनकी 'लोभ से हानि', 'बाइसकिल', 'शरद तरंगिनी', 'पुस्तक प्रार्थना' आदि फुटकर रचनाओं में देख सकते हैं।

(6) पं. माखनलाल चतुर्वेदी

पं. माखनलाल चतुर्वेदी द्विवेदी युग के मुख्य कवियों में से हैं। 1908 ई. से ही ये काव्य रचना करते रहे। खड़ी बोली की उनकी पहली रचना है – 'हे प्रशांत!' तथा 'तूफान हिये में कैसे कहूँ समा जा'। तत्कालीन पत्रिकाओं– 'प्रभा', 'मर्यादा', 'प्रताप', 'सरस्वती', 'कर्मवीर' आदि में उनकी रचनाएँ छपती थीं। 'चेतावरी, 'पत्नी' तथा 'हिम तरंगिनी' की अधिकांश रचनाएँ उन्होंने 1913 ई. से 1920 ई. के बीच की।

(7) सियारामशरण गुप्त

सियारामशरण गुप्त पर गांधीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। यद्यपि वे मुख्य रूप से गद्यकार हैं, किंतु उन्होंने कुछ काव्य रचनाएँ कीं जिनमें उनका हृदय पक्ष प्रकट हुआ है। 'उन्मुक्त' तथा 'मौर्य विजय' उनका प्रसिद्ध खंडकाव्य है। 'मौर्य विजय' में जहाँ उन्होंने ऐतिहासिक विषय को चुना वहीं 'उन्मुक्त' में प्रथम विश्व युद्ध में हुए नरसंहार पर लिखा। उन्होंने रवींद्रनाथ की कुछ कविताओं का अनुवाद भी किया जिनमें 'कर्त्तव्य' (1914 ई.) तथा 'भारत लक्ष्मी' मुख्य हैं। 'वीर बालक' (1913 ई.) 'अनाथ' (1917 ई.) के अलावा उन्होंने कुछ फुटकर रचनाएँ की थीं जिनमें 'जननी' (1916 ई.), 'श्री राघव विलाप' (1913 ई.) तथा 'तिलक वियोग' उल्लेखनीय हैं। 'विवाह' (1900 ई.) तथा 'अविश्वास' (1920 ई.) उनकी वीर रस पूर्ण रचनाएँ हैं।

(8) गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

गयाप्रसाद जी पर तत्कालीन समाज सुधार आंदोलन का बहुत प्रभाव पड़ा था। सामाजिक समस्याओं को उन्होंने अपना काव्य-विषय बनाया। उन्होंने उर्दू शैली के प्रबंधों और छप्पयों में रचनाएँ कीं। 'राष्ट्रीय वाणी' तथा 'त्रिशूल तरंग' उनके गीतों का संकलन है। 'कौशल्या का विलाप' उनकी प्रसिद्ध कृति है। इस रचना में उन्होंने देशवासियों को देश पर गौरव करने की प्रेरणा दी तथा ऐसे लोगों को फटकारा जो अपने देश पर गौरव नहीं करते।

> 'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
> वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।'

'कुसुमान्जलि', 'प्रेमपचीसी', 'कृषक बंदन', 'करूणा कादंबिनी' आदि उनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह हैं। उनके काव्य में उक्ति वैचित्र्य, शब्दों का चमत्कारी प्रयोग, छंद की बँधी हुई गति तथा कल्पना का समावेश स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

(9) नाथूराम शंकर शर्मा

नाथूराम शंकर शर्मा द्विवेदी युग के ऐसे कवि हैं जिन्हें छुटपन से ही कविता करने का शौक था। उन्होंने विभिन्न छंदों में काव्य रचना की। उस समय समस्यापूर्ति का खूब चलन था और नाथूराम जी समस्यापूर्ति में प्रवीण थे। वे आर्यसमाजी विचारधारा से प्रभावित थे, यही कारण है कि उनके काव्य में तार्किकता और तीखापन मिलता है। नाथूराम जी की प्रकाशित कृतियाँ हैं :

'अनुराग रत्न' (1903 ई.), 'शंकर सरोज' (1904 ई.), 'लोकमान्य तिलक' और 'गर्भरंडा रहस्य'।

'गर्भरंडा रहस्य' में उन्होंने विधवाओं की दीन दशा का मार्मिक चित्रण किया है। उनकी रचनाएँ 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'विधार्थी' तथा 'प्रतिभा' आदि पत्रिकाओं में छपती थी। समाज सुधार से संबंधित उनकी रचनाएँ हैं– 'अविद्यानंद का व्याख्यान', 'पंचपुकार', 'मेरा महत्व', 'आर्य-पंच की आल्हा'। नाथूराम जी ने फुटकर रचनाएँ भी की हैं, इनमें 'शोकाश्रु गीत', 'राजभक्ति', 'बाल विनोद', 'होली', नीति' आदि मुख्य हैं। तार्किकता और तीखापन के कारण नाथूराम जी खड़ी बोली के कबीर के रूप में भी प्रसिद्ध हुए।

(10) मुकुटधर पांडेय

मुकुटधर पांडेय द्विवेदी युग के मध्य भाग से काव्य रचना करने वाले कवि हैं। 1911-12 ई. से उन्होंने खड़ी बोली में काव्य रचना शुरू की। उनकी रचनाएँ हैं– 'काल की कुटिलता' (1913 ई.), 'जीवन साफल्य' (1912 ई.), 'रत्नाकर' (1913 ई.), 'संकेत सप्तक' (1913 ई.), 'सिंहोपालंभ' (1913 ई.), 'एक शुभ समय' (1913 ई.), 'कैकयी का पट्य' (1913 ई.)। ये रचनाएँ 'इंदु', 'सरस्वती' तथा 'प्रभा' पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। तत्कालीन समय में दलितों के प्रति कवियों की विशेष सहानुभूति थीं। यह समाज सुधार आंदोलन द्वारा संभव हुआ था। 'विश्वबोध' (1917 ई.) मुकुटधर जी की ऐसी ही रचना है जिसमें दलितों और दीनों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है। 'रूप का जादू' (1918 ई.), 'क्षमा प्रार्थना' (1918 ई.) 'मर्दित मान' (1918 ई.) तथा 'अंधीरा आँखें' रचनाओं में छायावादी प्रवृत्ति का उन्मेष दिखाई पड़ता है।

द्विवेदी युग के अन्य कवि हैं– ठाकुर गोपाल शरण सिंह, श्रीमन्न द्विवेदी, पं. रामचंद्र शुक्ल, पं. कामता प्रसाद गुरू, पं. रामचरित चिंतामणि, पं. गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', जगन्नाथ दास रत्नाकर। प्रसाद, पंत और निराला द्विवेदी युग से ही काव्य रचना करने लगे थे। यहाँ तक कि उनकी कई कृतियाँ इसी युग में प्रकाशित हुईं।

11.4 द्विवेदी युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

अब तक हमने द्विवेदी युग के गद्य-पद्य के रचनाकारों के बारे में जानकारी प्राप्त की है। हमने देखा कि तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव साहित्य पर पड़ा था। रचनाकारों की रचनाओं से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक समस्याओं को कवियों ने अपना विषय बनाया। युग करवट ले रहा था। घीसी-पीटी पुरानी मान्यताएँ अपने आप जर्जरित मकान के समान झर रही थीं। नई मान्यताओं से नए युग के निर्माण की नींव डाली जा रही थी। अब हम इस युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों की चर्चा करेंगे जिससे आपको यह समझने में कठिनाई न हो कि बदलाव किस रूप में आया। सर्वप्रथम हम विषय वस्तु को लें।

11.4.1 विषयों की व्यापकता

हम यह अध्ययन कर चुके हैं कि महावीरप्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व के कारण एक नए युग की शुरुआत हुई। द्विवेदी जी स्वयं साहित्यकार थे। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों में रचनाएँ कीं। किंतु इनके अलावा उनका सबसे बड़ा कार्य था– हिंदी भाषा साहित्य को परिमार्जित रूप देना। वे साहित्यकार से ज्यादा एक महान संपादक के रूप में याद किए जाते हैं। तत्कालीन साहित्यकारों को उत्कृष्ट साहित्य रचना के लिए वे सदा प्रेरित करते रहे। साहित्य किस प्रकार देश के उत्थान में योगदान देता है और उसकी क्रांतिकारी भूमिका किस प्रकार की होती है उसके संबंध में द्विवेदी जी ने लिखा :

> *''आँख उठा कर जरा और देशों और जातियों की ओर तो देखिए। आप देखेंगे कि साहित्य ने वहाँ की सामाजिक और राजकीय स्थितियों में कैसे-कैसे परिवर्तन कर डाले हैं, साहित्य ने ही वहाँ समाज की दशा कुछ की कुछ कर दी है, शासन प्रबंध में बड़े-बड़े उथल-पुथल कर डाले हैं, यहाँ तक कि अनुदार धार्मिक भावों को भी जड़ से उखाड़ फेंका है। साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है वह तोप, तलवार और बंब के गोलों में भी नहीं पाई जाती। योरोप में हानिकारिणी धार्मिक रूढ़ियों का उत्पादन साहित्य ही ने किया है, जातीय स्वतंत्रता के बीज उसी ने बोया है, व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के भावों को भी उसी ने पाला, पोसा और बढ़ाया है, पतित देशों का पुनरुत्थान भी उसी ने किया है। पाप की प्रभुत्ता को किसने कम किया है? फ्रांस में प्रजा की सत्ता का उत्पादन और उन्नयन किसने किया है, पादाक्रांत इटली का मस्तक किसने ऊँचा उठाया है? साहित्य ने, साहित्य ने, साहित्य ने।''*

इस प्रकार साहित्य को उपयोगी बनाने के लिए उन्होंने पश्चिम में हुए क्रांति का उदाहरण दिया। भारतेंदु युग से ही साहित्य के विषय-वस्तु में परिवर्तन शुरू हो गया था। स्वयं भारतेंदु ने विभिन्न विषयों पर लेखन किया और अपने समय के लेखकों को इसी कार्य के लिए प्रेरित किया। द्विवेदी युग में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में तेज़ी से बदलाव आ रहा था। प्रगतिशील विचारों का प्रचार हो रहा था। स्वयं द्विवेदी जी साहित्य में विविध विषयों के पक्षपाती थे। 1901 ई. वाले 'कवि कर्तव्य' लेख में द्विवेदी जी ने कविता के विषय के बारे में लिखा था, यह विचार उस समय के संपूर्ण साहित्य पर लागू होता है :

''कविता का विषय मनोरंजक और उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतुहल का अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की अब कोई आवश्यकता है, और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यंत; पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यंत; मनुष्य, बिंदु से लेकर समुद्र पर्यंत; जल, अनंत आकाश, अनंत पृथ्वी, अनंत पर्वत, सभी पर कविता हो सकती है, सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरंजन हो सकता है। फिर क्या कारण है कि इन विषयों को छोड़कर स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन करना ही कोई-कोई कवि कविता की चरम सीमा समझते हैं। केवल अविचार और अंध परंपरा।''

उपर्युक्त विचार के अनुसार द्विवेदी जी संसार में व्याप्त सभी चर-अचर विषयों को साहित्य की विषय-वस्तु मानते हैं। द्विवेदी युग में साहित्य के विषय-वस्तु का विस्तार हुआ। मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर साहित्य रचा जाने लगा। एक ओर इतिहास से प्रेरणा लेकर उसे आधुनिक संदर्भ में रखा गया तो दूसरी ओर तत्कालीन समस्याओं को विषय वस्तु के रूप में चुना गया। पहले काव्य रचना, गद्य-रचना के लिए विशिष्ट वर्ग का चुनाव होता था, अब जनसाधारण और सर्वसाधारण से संबंधित रचनाएँ होने लगीं। सामान्य से सामान्य व्यक्ति

को केंद्र में रखकर साहित्य रचना होने लगी। नारी को भोग की वस्तु के घेरे से बाहर निकाला गया। उसे अबला से सबला का रूप दिया गया। द्विवेदी युग में सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि अब तक जिन नारी पात्रों को साहित्य में उपेक्षित किया गया था उन पर काव्य रचनाएँ हुईं। यशोधरा, उर्मिला, विष्णुप्रिया, मांडवी, हिडिंबा आदि को एक नए रूप में प्रस्तुत किया गया। पुरुष द्वारा उपेक्षित ये नारी पात्र पुरुष के उत्थान की छिपी शक्ति के रूप में चित्रित किए गए।

साहित्य में अलौकिकता की जगह लौकिकता को स्थान मिला। लौकिकता में भी मानवीयता, आदर्शवाद और यथार्थवाद को ही आश्रय मिला। अब कल्पना को छोड़कर यथार्थ के धरातल पर साहित्य रचना होने लगी। तत्कालीन सभी साहित्यकारों ने चाहे वे काव्य रच रहे हों या गद्य रच रहे हों, लोकमंगल और लोकरक्षा को ही ध्यान में रखा। इस प्रकार साहित्य विशिष्ट वर्ग से हटकर सर्वहारा वर्ग तक पहुँच गया।

11.4.2 राष्ट्रीय काव्यधारा

इस दौर में अंग्रेज़ों की शोषण नीतियों से जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। देश का धन विदेश जा रहा था तो दूसरी ओर यहाँ के कुटीर उद्योग नष्ट हो रहे थे। शासक वर्ग का हर कदम यहाँ की जनता को कुचलने के लिए ही उठता था। दिखावे के रूप में किए गए कार्यों से अप्रत्यक्ष लाभ हुआ। पश्चिम के संपर्क से जनता को पता चला गया कि इस देश में उन्हीं अधिकारों को दबाया जा रहा है जिन्हें वर्षों पहले यूरोप की जनता ने प्राप्त कर लिया था। भारतीय नेताओं से लेकर साहित्यकारों तक और मजदूर से लेकर किसान तक सभी ने जालिम शासन को उखाड़ फेंकने के लिए कमर कस लिया। साहित्यकारों ने राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए लेखन शुरू कर दिया। तत्कालीन अंग्रेज़ी सरकार किसी भी ऐसे कार्य को तुरंत बंद करवा देती थी जिससे लोगों में राष्ट्रीय भावना का विकास हो किंतु महावीरप्रसाद द्विवेदी इस प्रकार के दबाव में नहीं आने वाले थे। वे कवियों और लेखकों को भयमुक्त होकर राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत रचना के लिए प्रेरित करते रहे। इस संदर्भ में उन्होंने आह्वान किया कि:

> *''परंतु परतंत्रता या पुरस्कार प्राप्ति या किसी कारण से सच बात कहने में किसी तरह की रुकावट पैदा हो जाने से यदि उसे अपने मन की बात कहने का साहस नहीं होता तो, कविता का रस जरूर कम हो जाता है। इस दशा में अच्छे कवियों की भी कविता नीरस, अतएव प्रभावहीन हो जाती है। सामाजिक और राजनैतिक विषयों में, कटु होने से सच कहना भी जहाँ मना है, वहाँ इन विषयों पर कविता करने वाले कवियों की उक्तियों का प्रभाव क्षीण हुए बिना नहीं रहता।''*

जन्मभूमि के प्रति प्रेम प्रकट करते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं :

जन्मभूमि की बलिहारी है।
यह सुरपुर से भी प्यारी है।। (द्विवेदी काव्यमाला, पृष्ठ 369)

मातृभूमि के प्रति अपना समर्पण व्यक्त करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा :

ऐसी मातृभूमि मेरी है स्वर्गलोक से भी न्यारी।
जिसके पद-कमलों पर मेरा तन-मन-धन सब बलिहारी।

राष्ट्र गायक मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। परिस्थिति के अनुकूल उन्होंने समय को वाणी दी। 'मातृभूमि' में वे कहते हैं :

'जय जय भारत भूमि भवानी।
अमरो ने भी तेरी महिमा बारम्बार बखानी।

'मंगलघट', पृ. 33

राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार हो रहा था। राष्ट्रनेता देश को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराना चाहते थे। एक ओर कवियों ने देश को विश्व में श्रेष्ठ माना, दूसरी ओर यह चिंतन करने के लिए भी कहा कि आखिर हम क्यों गुलाम हुए। भारत की श्रेष्ठता के बारे में सियारामशरण गुप्त ने लिखा :

पृथ्वी का श्रेष्ठ सितारा है,
भारत सर्वस्व हमारा है।

1914 ई. में माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा :

क्यों पड़ी परतंत्रता की बेड़ियाँ
दासता की हाय हथकड़ियाँ पड़ी।
न्याय के 'मुँह बंद' फाँसी के लिए
कंठ पर जंज़ीर की लड़ियाँ पड़ीं।

जागरण और अभियान गीतों द्वारा कवियों ने भारतीय जनमानस को अन्यायी शासक के खिलाफ तैयार किया। नाथूराम शर्मा 'बलिदान गान' में जागरण के लिए लिखते हैं :

लो स्वराज्य स्वातंत्र्य को दो जीवन बलिदान।
x x x x
देशभक्त वीरों, मरने से नेक नहीं डरना होगा।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।

रूपनारायण पांडेय कहते हैं :

उठो, उठो, क्यों शिथिल पड़े हो? देखो सुदिन सबेरा है,

'बलिदान गान', पृ. 248

न होगी हैट नैकटाई, न कालर और पतलूनें
हम इंग्लिश कोट को फिर से अंगरखा करके छोड़ेंगे।

'पराग देश संबंधी प्रोत्साहन', पृ. 20

मैथिलीशरण गुप्त रचित 'भारत भारती' तो राष्ट्रीय जागरण का मूल आधार ही बन गयी थी। इस रचना का जनता में व्यापक प्रचार हो गया था :

सुख और दुःख में एक-सा सब भाइयों का भाग हो
अंतःकरण में गूँजता राष्ट्रीयता का राग हो।
हे भाइयों, सोये बहुत अब तो उठो जागो, अहो।
देखो जरा अपनी दशा आलस्य को त्यागो, अहो।

'हरिऔध' जी ने 'प्रिय प्रवास' के माध्यम से जनजागरण का मंत्र फूँका :

बूढ़ों, करो वीर, स्वजाति का भला।
अपार दोनों विध लाभ है हमें।

समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए साहित्यकारों ने रचनाएँ कीं। उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध और लेखों के माध्यम से यह कार्य हुआ। काव्य रचनाओं से लोगों का

सही और गलत का ज्ञान भी कराया गया। भारतीय समाज को केंद्र में रखकर रचनाएँ हुईं। समाज को नए दृष्टि से देखने का यह पहला प्रयास था। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, सनातन धर्म, तदीय समाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा सामाजिक सुधार के लिए आंदोलन चलाए गए। स्वतंत्रता आंदोलन के साथ समाज सुधार के विभिन्न कार्यक्रम चलाए गए, इससे हिंदी साहित्य को विषयों का नया भंडार मिला। विधवा, किसान, अछूत, नारी दुर्भिक्ष, दलित, बाल और वृद्ध विवाह, छुआछूत, दंभ, दहेज, छल-कपट, निर्धनता, आडंबर, अविद्या, धार्मिक और नैतिक पतन, शिक्षा, पर्दा, पुजारी, पांडे, तीर्थ, रईसों की विलासिता, हिंदू-मुस्लिम समस्या आदि न जाने कितने विषय थे जिन पर साहित्यकारों ने लिखा और सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की माँग प्रस्तुत की।

बाल-विधवाओं पर श्रीधर पाठक लिखते हैं :

> दुखी बाल-विधवाओं की है जो गती।
> कौन सके बतला, किसकी इतनी मती।
> दुःख-सुख मरना जीना एक समान है।
> जिनके जीते जी दी गयी तिलांजली।

'मनो विनोद', पृ. 76

आगे वे लिखते हैं :

> बाल-विधवा श्रापवश यह भूमिका पातक भई।
> होत दुःख अपार सजनी निरखि जग निठुराई।

'मनो विनोद', पृ. 170

नाथूराम शर्मा ने जाति प्रथा पर करारी चोट किया :

> जाति पाति के धर्म-जाल में उलझे पड़े गँवार।
> मैं इन सबको सुलझा दूँगा, करके एकाकार।

'सरस्वती' खंड सं. 05, सन् 1908 ई.

मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'भारत भारती' में समाज के प्रत्येक पक्ष पर लिखा :

> 'हिंदू समाज कुरीतियों का केंद्र जा सकता कदा।
> ध्रुव धर्म पथ में कुप्रथा का जाल सा है बिछा रहा।'

इस प्रकार तत्कालीन कवियों ने समाज को एक नए राह पर लाने के लिए महान कार्य किया।

11.4.3 मानवतावादी दृष्टिकोण

भारतेंदु काल से भारतीय समाज में एक महान परिवर्तन शुरू हो गया था। किसी भी बात को तर्क के आधार पर जाँच करने के बाद मानने की चेतना का विकास होने लगा। खंडन-मंडन, तर्क-वितर्क और बौद्धिक जागरण के कारण सत्य को ढूँढने की प्रवृत्ति जाग गई। नीर-क्षीर विवेक की प्रवृत्ति ने साहित्य जगत को भी प्रभावित किया। पश्चिमी विज्ञान, आर्य-समाज, रवींद्र और गांधी की नयी वैचारिक क्रांति के फलस्वरूप पौराणिक मान्यताएँ निरर्थक सिद्ध होने लगीं। साहित्य में इस विचारधारा को हम स्पष्ट रूप में देख सकते हैं। राम और कृष्ण अब देवताओं के रूप में नहीं बल्कि मानवीय रूप में चित्रित होने लगे। 'साकेत' और 'प्रिय प्रवास' में क्रमशः राम तथा कृष्ण को मानवीय रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। 'पंचवटी' के लक्ष्मण का कथन यह दर्शाता है कि मनुष्यता के द्वारा ही देवत्व की भी उत्पत्ति होती है :

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

मैं मनुष्यता को सुरत्व की,
जननी भी कह सकता हूँ।

साहित्य में मानवीय भावना किस रूप में स्थान पा रही है उसका प्रमाण मैथिलीशरण गुप्त रचित 'भारत भारती' के इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा :

'पानी बनाकर रक्त का, कृषि कृषक करते हैं यहाँ
फिर भी अभागे भूख से, दिन रात मरते यहाँ।'

द्विवेदी युगीन कवि ठाकुर गोपाल शरण सिंह की निम्नलिखित पंक्तियों में मानवीय भावनाओं को ही जगाया गया है :

मानव का जीवन ही जग में
मानवता का माप हुआ।
भव्य भावनाओं का आकार
बनकर काव्य कलाप हुआ।

द्विवेदी युग के साहित्य में मानवता को धर्म से भी बड़ा माना गया। किसान, मजदूर, अशिक्षित आदि काव्य के वर्ण्य विषय बने :

खपाया किये जान मजदूर, पेट भरना पर उनका दूर
उड़ाते माल धनिक भरपूर, भलाई, लड्डू मोतीचूर।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', 'मर्यादा', पृ. 49

'सरस्वती' उस युग की जनचेतना की पत्रिका बन गई थी। लेखों के माध्यम से लेखकों ने जन जागरण का कार्य किया। जून 1914 ई. में 'सरस्वती' में द्विवेदी जी ने 'हमारे गरीब किसान और मजदूर' शीर्षक से एक लेख छापा, लेखक थे– जनार्दन भट्ट। इस लेख में अमीरी-गरीबी के रूप का विश्लेषण किया गया है। वर्ग चेतना का यह प्रथम प्रयास था।

इस प्रकार द्विवेदी युगीन साहित्य में जहाँ नए-नए विषयों का समावेश हुआ वहीं पुरानी सड़ी गली मान्यताओं की जगह प्रगतिशील विचारधारा का प्रवेश हुआ। साहित्य रचना कर लेखकों ने समाज और राष्ट्र को आगे बढ़ाने का कार्य किया।

बोध प्रश्न-2

(क) नीचे दिए गए तथ्यों की जाँच करते हुए सही (✓) अथवा गलत के चिह्न (×) लगाएँ।

(i) श्रीधर पाठक को प्रकृति विषयक कविता लिखने में विशेष सफलता मिली।

(ii) रवींद्रनाथ ठाकुर के 'काव्येर उपेक्षिता' शीर्षक लेख से प्रेरित होकर मैथिलीशरण गुप्त ने 'उर्मिला', 'यशोधरा' आदि पात्रों को अपनी रचना का विषय बनाया।

(iii) 'प्रिय प्रवास' के लेखक रामनरेश त्रिपाठी हैं।

(iv) 'कवि कर्तव्य' शीर्षक लेख महावीर प्रसाद द्विवेदी की रचना है।

(v) 'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक के समान है।

– यह पंक्ति गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की है।

(ख) मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशिष्टताओं का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

(ग) मैथिलीशरण गुप्त से इतर द्विवेदी युग के अन्य महत्वपूर्ण कवियों का नामोल्लेख करते हुए उनकी दो-दो रचनाओं का नाम बताइए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

(घ) द्विवेदी युग के विषय के विस्तार के संदर्भ में महावीरप्रसाद द्विवेदी के योगदान की चर्चा दस पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

....

....

....

....

....

....

(ङ.) द्विवेदी युग की कविताओं में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का सोदाहरण उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

11.5 द्विवेदी युगीन साहित्य का महत्व

हिंदी साहित्य के उत्थान का संबंध भारत की तत्कालीन बदलती हुई राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से है। भारतेंदु के आगमन से हिंदी गद्य की विविध विधाओं का विकास हुआ। एक ओर राजनीतिक उत्थान-पतन का दौर चल रहा था तो दूसरी ओर साहित्य में निरंतर विकास का रूप भी उभर रहा था। राष्ट्रीयता का विकास उस समय और भी संगठित रूप में हुआ जब अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। हिंदी का प्रचार राष्ट्रीय विचारधारा का प्रचार बन गया। बड़े-बड़े नेताओं ने हिंदी को अपनाया। पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन एक युगांतकारी घटना थी। भारतेंदु ने हिंदी को अपने पाँव पर खड़ा रहना सिखाया था किंतु जिस माधुर्य और सुकुमारता की आवश्यकता थी वह अभी बन नहीं पाई थी। द्विवेदी जी ने हिंदी भाषा को अनुवाद के द्वारा उत्पन्न अराजकता के वातावरण से बाहर निकाला। जिस समय 'सरस्वती' में छपने के लिए कोई सामग्री पहुँचती द्विवेदी जी उसे ध्यान से देखते और एक-एक शब्द के प्रयोग से संबंधी चेतावनी लिख कर लेखकों को भेजते। इस प्रकार भाषा को परिमार्जित करने का सफल प्रयास किया। खड़ी बोली को समसामयिक संवेदना का वाहक बनाकर उन्होंने हिंदी साहित्य को एक नई गति प्रदान की। साहित्य को विषयों की परिसीमा से बाहर निकाला। पौराणिक आख्यानों को समसामयिक

संदर्भ में रखकर साहित्य की रचना हुई। साहित्य में मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रचार हुआ। अब साहित्य में समाज के केवल प्रतिष्ठित और सुख-सुविधा भोगी वर्ग का ही नहीं बल्कि सर्वहारा वर्ग को भी स्थान दिया गया। चाहे मजदूर हो या किसान, नारी हो या दलित, सभी की समस्याओं को साहित्य में स्थान दिया गया। उस समय के साहित्य की सबसे बड़ी माँग थी– राष्ट्रीयता। देश को विदेशी शासन से मुक्त कराना सबसे बड़ी आवश्यकता थी। रचनाओं के माध्यम से लोगों में राष्ट्रीय भावना को फैलाकर साहित्यकारों ने स्वाधीनता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उस समय रचनाकारों की रचनाएँ लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत बन गई। अनुदित रचनाओं द्वारा हिंदी साहित्य को विस्तार दिया गया। इस प्रकार द्विवेदी युग में हिंदी साहित्य को एक नया आयाम मिला। इस युग में दो महत्वपूर्ण कार्य हुए, एक था साहित्य में विविध विषयों का समावेश तथा दूसरा परिमार्जित भाषा का विकास।

11.6 सारांश

- भारतीय राजनीति में अंग्रेज़ों के हस्तक्षेप से यहाँ के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रतिकूल असर पड़ा। शासन का अधिकार प्राप्त कर लेने पर अंग्रेज़ों ने इस राष्ट्र का शोषण ही नहीं किया बल्कि यहाँ के लोगों पर अमानुषिक अत्याचार भी किए। जनता इस अत्याचार को कब तक सहन करती। बड़े-बड़े नेताओं और प्रबुद्ध व्यक्ति तथा साहित्यकारों ने जालिम सरकार के खिलाफ आवाज़ उठाई। साहित्य के माध्यम से जन जागरण का कार्य हुआ।
- सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक चेतना का प्रारंभ भारतेंदु युग में ही हुआ, इसी चेतना का विस्तार और विकास द्विवेदी युग में हुआ।
- द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने चाहे वे गद्य की रचना कर रहे हों या पद्य की, सभी में युगानरूप साहित्य की रचना की।
- तत्कालीन समाज सुधार आंदोलन का प्रभाव समाज पर पड़ा था। सामाजिक समस्याओं को लेखकों ने विषय वस्तु के रूप में चुना। राष्ट्रीय जनजागरण का कार्य किया तथा साहित्य में सर्वहारा वर्ग को स्थान दिया।

11.7 शब्दावली

अराजकता : अशांति, हलचल, शासन का अभाव

उच्छृंखलता : मनमाना काम करने की प्रवृत्ति

परिमार्जित : दोष, त्रुटियों से रहित

गरम तथा नरम दल : कांग्रेस पार्टी में क्रमशः समझौता और उग्रता प्रदर्शित करने वालों का दल

उजागर : प्रकाशित, जगमगाता हुआ

भूतल : पृथ्वी

जर्जरित : जो पुराना होने के कारण काम का न रह गया हो

11.8 उपयोगी पुस्तकें

हिंदी साहित्य का इतिहास – रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण – रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

द्विवेदी युगीन काव्य – पूनमचंद्र तिवारी, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, 97, मालवीय नगर, भोपाल–3

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

(क) (i) महावीर प्रसाद द्विवेदी 1903 ई. में 'सरस्वती' के संपादक बने।

(ii) 'ठेठ हिंदी की ठाठ' उपन्यास के लेखक पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हैं।

(iii) 'राजश्री' नाटक जयशंकर प्रसाद की रचना है।

(iv) किशोरीलाल गोस्वामी 'उपन्यास' नामक पत्रिका का संपादन करते थे।

(v) 'सुदामा' नाटक के लेखक बाबू शिवनंदन सहाय हैं।

(ख) (i) बंगमहिला

(ii) जयशंकर प्रसाद

(iii) वृंदावनलाल वर्मा

(iv) प्रेमचंद

(v) माधवराव सप्रे

(ग) देखिए–भाग 11.3.1

(घ) देखिए–भाग 11.3.1

बोध प्रश्न – 2

(क) (i) – ✓

(ii) – ✓

(iii) – ×

(iv) – ✓

(v) – ✓

(ख) देखिए–भाग 11.3.2

(ग) देखिए–भाग 11.3.2

(घ) देखिए–भाग 11.4.1

(ङ) देखिए–भाग 11.4.2

Notes

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

Notes

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY